विद्यापीठ-प्रकाशन-मालायां ४१तमं पुष्पम्

परमहंस-परिव्राजकाचार्य-श्रीशङ्कराचार्याणां परमगुरुवर—
परम-पूज्य-श्रीगौडपादाचार्यवर्य-विरचिता

श्रीसुभगोदय-स्तुतिः

[हिन्दी-परिशीलन-सहिता]

प्रधान सम्पादकः —
डॉ० मण्डनमिश्रः, प्राचार्यः



सम्पादकः परिशीलनकर्ता च —
डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठी, आचार्यः

प्रकाशन-स्थलम्
श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्
शहीदजीतसिंहमार्गः, कटवारिया सराय,
नई दिल्ली-१६

सन् १९८२ मूल्यम् ३-०० (तीन रुपये मात्र)

मान्त्रिक स्तुतियों की परम्परा में—

"सुभगोदय-स्तुति" का परिशीलन

स्तुतिः सर्वार्थ-साधिका

"उबलते पानी को शीतल करने में विलम्ब हो सकता है, किन्तु क्रुद्ध व्यक्ति को प्रसन्न करने में नहीं, क्योंकि वह 'स्तुति' सुनते ही सब भूल जाता है।" यह कहना पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है। भगवती ललिता के आदेश से निर्मित एवं आविष्कृत **'ललिता-सहस्रनाम'** में वशिन्यादि वाग्देवियों ने **'स्तोत्रप्रिया'** और **'स्तुतिमती'** जैसे नामों से यह व्यक्त किया है कि 'हमारे इष्टदेवों को प्रसन्न करने का यह एक सुगम उपाय है।' महाकवि कालिदास ने भी इस की पुष्टि में कहा है कि—**'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये'**।

हमारी वाणी के विकास का मूल प्रणव है जिसे हम 'ओङ्कार' नाम से भी जानते हैं। पाणिनि के व्याकरणानुसार स्तुत्यर्थक **'नू'** धातु से ही **'नौति'** अथवा **'नूयते'** व्युत्पत्तियों के आधार पर 'अच्' प्रत्यय होने पर **'नवः'** शब्द बना है और प्रकृष्टार्थक **'प्र'** उपसर्ग के योग से **'प्रणव'** शब्द व्यवहार में आया है। यह मानव के श्वास-प्रश्वास से सहज उच्चरित **'सोहम्'** रूप अजपामन्त्र के अविरलोच्चारण से **'स'** और **'ह'** का लोप हो जाने के कारण **'ओम्'** बना और इसी को प्रणव की संज्ञा दी गई। इस प्रकार प्रणव प्रकृष्ट स्तुति का ही बोधक है जिसे प्राणी जन्मकाल से ही नहीं, अपि तु मातृगर्भ में ही वहां के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए जपता रहता है और जन्म लेते ही रोने के स्वर में ॐ-ॐ बोलकर जप करता है।

प्रणव से ही समस्त वर्णमाला का विस्तार हुआ है, यह भी सर्वविदित है। वर्णमाला ही क्यों वेदों, के विस्तार के मूल में भी तो प्रणव की ही सत्ता है। अतः प्रणव जब एक विशिष्ट स्तुति है तो उससे व्याप्त वैदिक-वाङ्मय भी स्तुतिरूप क्यों न हो? इसीलिये "ऋग्-यजुः-साम और अथर्वरूप वेदचतुष्टयी उस परब्रह्म की स्तुति ही है" यह कहना नितान्त सत्य एवं सर्वस्वीकृत तथ्य है।

हमारा समस्त साहित्य स्तुति-साहित्य से ओतप्रोत है। चाहे हम परमात्मा को निराकार मानें अथवा साकार; परन्तु उसकी स्तुति, प्रार्थना, कृतज्ञताज्ञापन, आत्मनिवेदन आदि उसके प्रति प्रारम्भ से ही होते रहे हैं, हो रहे हैं और होते ही रहेंगे, क्योंकि यह हमारा कर्तव्य है, अभीष्ट है। स्तुति करने में मानव का एक विशिष्ट लक्ष्य होता है—कृपा-प्राप्ति। अकारण-करुणाकरण-परायण प्रभु की कृपा-प्राप्त होने से सभी कामनाएं पूर्ण होती

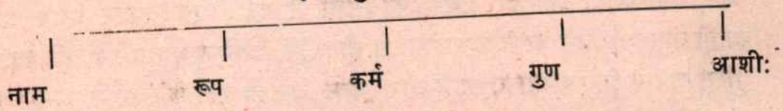
हैं। स्तुति करने में कोई व्यय नहीं होता, कोई विशेष बन्धन भी नहीं है तथा सर्वविध आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। इसीलिये कहा गया कि-"**स्तुतिः सर्वार्थ-साधिका**'।

स्तुतीनामानन्त्यं भुवि विजयते सर्वसुखदम्

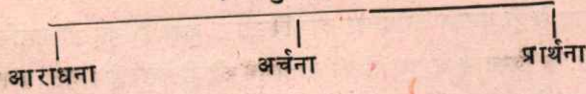
आकार, प्रकार, शैली, वर्ण्यवस्तु, कथनीय एवं शास्त्रीयतत्त्वसमावेश आदि के कारण संस्कृत-भाषा में प्रणीत स्तुति-साहित्य अनन्त है। भक्त की भावनाओं को भव्य-भाषा से भूषित करते हुए निर्मित स्तुतियों का वैभव इतना अधिक समुन्नत है कि उसका समग्र-दर्शन तो दूर रहा, एक कोण-दर्शन भी हमारी शक्ति से बाहर प्रतीत होता है। वैदिक-वाङ्मय में जो स्तुतियां उपलब्ध हैं वे अवश्य ही हृदय को भाव-विभोर करने वाली हैं। स्तुतिरूप मन्त्रों में रस-संवलित अलंकृत-शैली का परिपाक सौरभ बिखेर रहा है, उदात्त कल्पनाओं का अम्बार लगा हुआ है और पैनी दृष्टि से चित्रण को मूर्तिमान् किया गया है।

तन्त्र, पुराण और उपपुराण स्तुति-साहित्य के अक्षय निधि हैं। प्रत्येक देवता के देवत्व का प्रतिपादन उनके स्वरूप, कर्म आदि के वर्णन से इन स्तुतियों में मुखरित हुआ है तथा उनकी शक्ति और क्रियाकारित्व का दिग्दर्शन भी उनमें स्पष्टतः परिलक्षित है। स्तुति अथवा स्तोत्र की इस विशाल परम्परा के प्रसार के साथ ही इसमें शास्त्रीय प्रक्रियाओं का भी समावेश परिस्फुटित होने लगा। हृदय की गहनतम गुहा में निहित रहस्यों की तेजस्विनी किरणों का आलोक, जन-जन के अन्तर में निहित प्रकाश, उस रहस्यमय प्रकाश के साथ एकाकार होने के लिए आतुर हो गया। इसी आतुरता ने स्तुति के विभिन्न प्रकारों को जन्म दिया जिनका एक लघु सङ्कलनात्मक वर्गीकरण का प्रारूप इस प्रकार है—

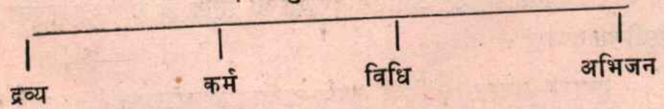
१—स्तुति/स्तोत्र



२—स्तुति / स्तोत्र

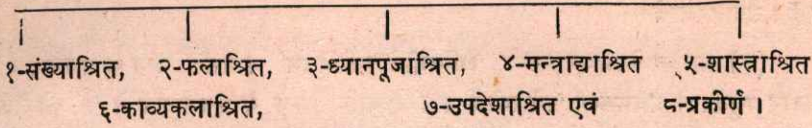


३—स्तुति / स्तोत्र

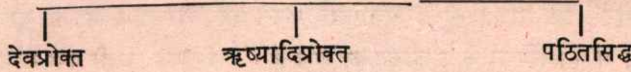


१. स्तुतिस्तु नाम्ना रूपेण कर्मणा बान्धवेन च।
स्वर्गायुर्धनपुत्राद्यैरर्थैराशीस्तु कथ्यते ॥
—शौनकीय बृहद्देवता

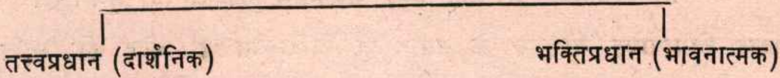
४—स्तुति / स्तोत्र



५—सिद्ध-स्तुति / स्तोत्र



६—स्तुति / स्तोत्र



इनके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न दृष्टि से निम्नलिखित वर्ग भी बनाये जा सकते हैं—

१-पद्यात्मक, गद्यात्मक और उभयात्मक ।

२-संस्कृत, प्राकृतादि भिन्न-भिन्न भाषात्मक ।

३-स्वाश्रयी तथा पराश्रयी ।

४-मौलिक तथा अनुकरणात्मक ।

५-व्यापक और व्याप्य ।

इसी प्रकार लेखन-पद्धति, भाषा-पद्धति, रचना-शिल्प आदि विविध दृष्टिकोणों से स्तुति/स्तोत्रों के उपवर्ग और अन्तर्वर्ग भी होते हैं, जिनसे हम उनकी महत्ता के सहज दर्शन कर सकते हैं।[1] अतः यह कहना उचित ही है कि-**'स्तुतीनामानन्त्यं भुवि विजयते सर्वसुखदम् ।'**

मन्त्राद्याश्रित स्तुति-साहित्य

विभिन्न स्तुति-प्रकारों में से मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, भेषज, योग, बीजमन्त्र, तान्त्रिक आम्नाय, आचार एवं सिद्धान्तों को प्रस्फुटित करनेवाली स्तुतियां अथवा स्तोत्रों की रचना भी संस्कृत-साहित्य में पर्याप्त महत्त्व रखती हैं। साधकों के हृदयोद्गारों का अक्षय कोष ऐसी स्तुतियों में भरा पड़ा है। उपासना के गम्भीर रहस्यों को स्तुतिकारों ने सङ्गोपन-पद्धति से इस प्रकार गुम्फित किया है कि कोई विरला ही उन्हें समझ पाता है। वैसे साधक टीकाकारों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है जिसके आधार पर ज्ञात होता है कि यह पद्धति अतिप्राचीन काल से चली आ रही है। यथा—

---

१. ऐसे स्तुति-विषयक वर्गीकरणों के लिए देखें—श्रीयशोविजय उपाध्याय द्वारा प्रणीत **'स्तोत्रावली'** में लेखक द्वारा लिखित **'उपोद्घात'** ।

वैदिक-वाङ्मय में कतिपय ऐसे मन्त्र आते हैं जिनके द्वारा बीजमन्त्रों के सङ्केत प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ—

(१) ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र **'अग्निमीडे पुरोहितम्'** इत्यादि मन्त्र के प्रथमाक्षर से **'अ'** और यजुर्वेद के प्रथममन्त्र **'इषे त्वोर्जे त्वा'** इत्यादि मन्त्र के प्रथमाक्षर से **'इ'** को लेकर गुणसन्धि करने से अ+इ=**'ए'** बना और सामवेद के प्रथममन्त्र **'अग्न आयाहि वीतये'** के आद्याक्षर 'अ' को ग्रहण करके ए से पूर्व रखकर वृद्धिसन्धि करने से अ+ए=ऐ अक्षर की रचना हुई और इसे नाद-बिन्दु से समन्वित करने पर वाग्भव-बीज की सृष्टि हुई। यही बीज श्रीविद्या में कादिविद्या के प्रथमकूट का मूल है।[1] **'श्रीसूक्त'** के ही एक मन्त्र—

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥५॥[2]

में निर्दिष्ट त्रिमात्रोपेत ओङ्कार के समान ही त्रिबिन्दूपेत **'ईं'** बीज की स्तुति की गई है। यही कामकला है और अकाररूप विष्णु की स्त्री ई=लक्ष्मी है। यही बीज अन्यत्र **देवीसूक्तादि** विभिन्न श्रुतियों में भी स्तुति के रूप में निविष्ट है। यथा—

"यः प्राणिति य ईं शृणोति यदलकं शृणोति; य ईं चकार न सो अस्य वेद, य ईं ददर्श, चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तः, स ईं पाहि, स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः, क ईं वेद ससुते सचा, क ईं व्यक्त्या नरस्सनीलाः, य ईं वहन्त आशुभिः" इत्यादि।

'यजुर्वेद' के—

यस्माज्जातं न पुरा किं च नैव य आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सं रराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचेतस षोडशी॥ (३२।५)

इस मन्त्र में 'त्रीणि ज्योतींषि' पद से तीन ज्योतियों—बाला, पञ्चदशी और षोडशी की स्तुति की गई है। षोडशीपात्र, षोडशीयाग तथा षोडशी विद्या में षोडशी शब्द समानरूप से व्यवहृत होता है। वैदिक सूक्त एवं गणेशोपनिषदादि उपनिषदों में ऐसी मान्त्रिक स्तुतियों का मूल बहुत ही निगूढरूप से व्याप्त है। **घृतसूक्त में—**

श्रियं लक्ष्मीमौबलामम्बिकां गां षष्ठीं जयामिन्द्रसेनेत्युदाहुः।
तां विद्यां ब्रह्मयोनिं सरूपामुदायुषो तर्पयामो घृतेषु॥

---

१. दुर्वासा-विरचित **'त्रिपुरामहिम्नः स्तोत्र'** में इस बीज की स्तुति इस प्रकार है—

वन्दे वाग्भवमैन्दवात्मसदृशं वेदादि-विद्या गिरो,
भाषा देशसमुद्भवाः पशुगताश्छन्दांसि सप्तस्वरान्।
तालान् पञ्च महाध्वनीन् प्रकटयत्यात्मप्रसारेण यत्,
तद् बीजं पदवाक्यमानजनकं श्रीमातृके ते परम् ॥५॥

२. 'श्रीसूक्त' के प्रत्येक मन्त्र के मन्त्र, यन्त्र और प्रयोगों को **'लक्ष्मीतन्त्र'** में विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है।

ब्रह्मविद्या की यह स्तुति भी मान्त्रिक संकेतों से पूर्ण है। अथर्ववेदीय-'देव्युपनिषद्', और 'त्रिपुरोपनिषद्' आदि में सङ्केतरूप से मन्त्र-बीज-निर्देश की परम्परा भी प्रवाहित हुई है। यथा—

कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमातादिविद्या ॥८॥

इस मन्त्र में 'कादिविद्या' कामराजोपासिता और अग्रिम ऋचा में 'लोपामुद्रोपासिता-विद्या' का उपदेश किया है—

षष्ठं सप्तममथ वह्निसारथिमस्या मूलत्रिकमावेशयन्तः।
कथ्यं कविं कल्पकं काममीशं तुष्टुवांसो अमृतत्वं भजन्ते ॥९॥

(२) सम्भवतः मन्त्र-गोपन-पूर्वक शिष्योपदेश की इस रहस्यमयी प्रवृत्ति को ही गुरुपरम्परा से प्राप्त कर हमारे साधक आचार्यों ने विभिन्न स्तुतियों में विभिन्न पद्धतियों से ग्रथित किया है। जिनमें "(१) साक्षात् निर्देश, (२) पर्यायद्वारा निर्देश, (३) अति-गुप्ताङ्कन-पद्धति, (४) प्रहेलिकादि कूटप्रक्रियोक्त, (५) नामनिर्देश, (६) यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र-भेषज-योग-प्रक्रियादि निर्देश (७) पूजा-पद्धति, (८) काम्यप्रयोगादि निर्देश" जैसी अनेक रहस्यों से पूर्ण स्तुतियां निर्मित हुई हैं। ऐसी स्तुतियों में कतिपय चिरस्मरणीय एवं अनुशीलनीय स्तुतियां इस प्रकार हैं—

१. **षोडशार्णाद्य-मकरन्द-स्तवराज**	(रुद्रयामल में श्रीशिवप्रोक्त)	१७ पद्य
२. **मूलमन्त्रात्मकबालास्तुति**		४ पद्य
३. **श्रीदेवी-लघुस्तव**	(श्रीधर्माचार्य, पञ्चस्तवी के अन्तर्गत)	२१ पद्य
४. **श्रीगायत्रीस्तवराज**	(विश्वामित्र विरचित)	२५ ,,
५. **श्रीकालीकर्पूरस्तवराज**	(कालिकास्तोत्र महाकालप्रोक्त)	२२ ,,
६. **श्रीपरापूजा-प्रकाशस्तोत्र**	(पूर्वाचार्य विरचित)	२७ ,,
७. **श्रीकामकलात्मक पाशुपतस्तोत्र**	(,,)	२४ ,,
८. **श्रीबगलामुखी स्तोत्र**	(,,)	८ ,,
९. **श्रीअश्वारूढा-सरस्वतीस्तोत्र**	(,,)	५८ ,,
१०. **त्रिपुरामहिम्नः स्तोत्र**	(श्रीदुर्वासा मुनि रचित, टीका नित्यानन्द)	
११. **शक्तिमहिम्नः स्तोत्र**	(,,)	
१२. **पञ्चमीस्तवराज**	(रुद्रयामलस्थ)	२०० ,,

इसी प्रकार सभी देवताओं की मन्त्रात्मक स्तुतियां प्राप्त होती हैं जिनका सङ्कलन पृथक् लेख की अपेक्षा रखता है।[1] इतना ही नहीं, यही पद्धति अन्य सम्प्रदाय; जैसे जैन एवं

---

१. हमने ऐसी स्तुतियों का विवेचन तथा नामाङ्कन 'मान्त्रिक-स्तुतियाँ' नामक लेख में पृथक् रूप से किया है, जो प्रकाश्य है।

बौद्धों में भी पूर्णतः ग्राह्य हुई है। जैन-सम्प्रदाय के **'भक्तामर-स्तोत्र, कल्याणमन्दिरस्तोत्र, पद्मावती-स्तोत्र'** आदि कतिपय तो ऐसे सुप्रसिद्ध स्तोत्र हैं, जिनमें सभी तान्त्रिक-प्रक्रियाओं का समावेश हुआ है तथा 'वृद्धसम्प्रदाय' के आधार पर इन स्तोत्रों के पद्यों द्वारा नित्य, नैमित्तिक तथा काम्यप्रयोगों के विधान भी निर्दिष्ट हैं।

श्रीसुभगोदयस्तुति की परम्परा में प्रणीत भगवत्पाद आद्यशङ्कराचार्य की **"सौन्दर्य-लहरी'** आधुनिक तान्त्रिकों में परम आदरणीय है। इस पर प्रायः ४० टीका-प्रटीकाएं प्राप्त हैं उनसे इसका महत्त्व और भी बढ़ा है। इसके भी अनेकविध तान्त्रिक प्रयोगों का वर्णन मन्त्र, यन्त्रादि के साथ हुआ है।

प्रस्तुत **'सुभगोदय-स्तुति'** इस परम्परा की एक महनीय कृति है। इसके प्रणेता **श्रीगौडपादाचार्य** हैं, जो कि एक महान् सिद्ध थे। उनके बारे में कुछ परिचय इस प्रकार है—

श्रीगौडपादाचार्य

यह सर्वविदित है कि श्रीगौडपादाचार्य श्रीशङ्कराचार्य के गुरु श्रीगोविन्दपाद के भी गुरु थे। गुरुपरम्परा-स्मरण में प्रत्येक साधक निम्नलिखित पद्यों के द्वारा इन्हें अपनी प्रणति इस प्रकार अर्पित करता है—

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र-पराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्द-योगीन्द्रमथास्य शिष्यम्॥
श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि॥

इसमें वर्णित गुरु-परम्परा के अनुसार श्रीगौडपाद शुकदेव के पश्चाद्वर्ती हैं और सम्भवतः उनके शिष्य भी। म० म० गोपीनाथ कविराज का कथन है कि—

"गौडपाद महान् वैदान्तिक थे, उनकी **'माण्डूक्यकारिका'** अपूर्व रचना है, जो एक ओर ब्रह्मपदनिष्ठा तथा दूसरी ओर ज्ञान-निष्ठा की परिचायिका है। गौडपाद एक ओर जिस प्रकार **'माध्यमिक अद्वयवाद'** में, उसी प्रकार पक्षान्तर में **'योगाचारों के अद्वयवाद'** में भी निष्णात थे। बौद्धदर्शन में वे विशिष्टरूप में प्रविष्ट थे। **'शून्यवाद'** तथा **'विज्ञप्तिमात्रता-वाद'** दोनों का ही उन्हें अच्छा परिचय था। **'आगममत'** में भी उनका ज्ञान उत्कृष्टकोटि का था, क्योंकि **'देवीकालोत्तर'** का कोई-कोई वचन उनकी कारिकाओं में उपलब्ध होता है। अवश्य ही इस पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता। वैदिक गौडपाद का यही स्वरूप है। आगम दृष्टि से जान पड़ता है कि वे **'समयाचार-सम्मत तान्त्रिक मत'** के पोषक थे।"[1]

श्रीगौडपाद के सम्बन्ध में उनका 'श्रीविद्या-सम्प्रदाय-गुरुपरम्परा' में होना और आचार्य

---

१. द्रष्टव्य—**'तान्त्रिक-संस्कृति'** (वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित तन्त्र-सम्मेलन १९६५ ई. में प्रकाशित) पृ० ११-१२,

श्रीशङ्कर के परमगुरु होने का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों से भी पुष्ट होता है[1] तथा इन्हीं की परम्परा में दीक्षित होने के कारण श्रीशङ्कराचार्य का वैदिकत्व एवं तान्त्रिकत्व के साथ ही वेदान्त-प्रस्थान का आचार्यत्व भी क्रमप्राप्त प्रतीत होता है।

'**डॉ० सी० आर० स्वामीनाथन्**' द्वारा केरल भाषा में लिखित "**श्रीशङ्कराचार्य के जीवन-परिचय**' में श्रीगौडपादाचार्य का प्रासङ्गिक परिचय देते हुए बतलाया है कि—'वे मङ्गलदेश (बंगाल) के निवासी थे।' बंगाल का ही अपरनाम गौडदेश है अतः वहां के होने के कारण वे '**गौडपाद**' नाम से प्रख्यात थे। शेषावतार पतञ्जलि के श्रीमुख से महाभाष्य का इन्होंने अध्ययन किया था। वहां किसी छात्र ने उत्सुकतावश पर्दे के पीछे रह कर पढ़ाने वाले सहस्रमुख-गुरुप्रवर—जो कि एक साथ हजार शिष्यों की शङ्का का समाधान करते थे—के दर्शन की उत्कट इच्छा से वह पर्दा हटा दिया तभी विषज्वाला से वहां स्थित सभी छात्र भस्म हो गये। संयोगवश गौडपाद वहां उपस्थित नहीं थे किन्तु इस घटना के पश्चात् वे वहां पहुंचे। सहपाठियों की वैसी स्थिति देखकर चिन्तित एवं आश्चर्यान्वित हुए। उसी समय शिष्यों के विनाश से खिन्न पतञ्जलि ने निर्दिष्ट शापवश गौडपाद को भी ब्रह्मराक्षसाविष्ट होते देखा। 'मेरे भाष्य का यही एक मात्र ज्ञाता रह गया है, यही इसका प्रचार कर सकेगा'—ऐसा सोचकर उन्होंने गौडपाद को आदेश दिया कि–'तुम किसी योग्य शिष्य को यह भाष्य पढ़ा दोगे, तब तुम्हारे शाप की निवृत्ति होगी और तुम ब्रह्मराक्षस से मुक्त हो जाओगे।' फलतः नर्मदा के तीर पर वे इस प्रतीक्षा में थे। भगवान् शेषनाग ने ही कृपावश चन्द्रशर्मा नामक एक शिष्य वहां उपलब्ध कराया तथा उसकी परीक्षा लेकर श्रीगौडपाद ने उसे भाष्य पढ़ाया। ये ही चन्द्रशर्मा संन्यासदीक्षा प्राप्त कर '**गोविन्दपाद**' नाम से विख्यात हुए जिनके शिष्य श्रीशङ्कर थे।'

इसी चरित्र में एक अन्य स्थान पर पुनः श्रीगौडपाद का स्मरण हुआ है। "जब श्रीशङ्कराचार्य बदरीकाश्रम पधारे तो वे वहां गुरुदर्शनार्थ भी गये। वहां एक गुफा में श्रीगौडपाद तथा श्रीगोविन्दपाद समाधिस्थ थे। तब '**दक्षिणामूर्ति-स्तोत्र**' द्वारा उन्होंने प्रार्थना की। इस स्तोत्र की पंक्तियां सुनकर दोनों गुरु समाधि से उठे और ब्रह्मतत्त्वज्ञ शिष्य को समक्ष पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए। यहीं परमगुरु श्री गौडपाद ने श्रीशङ्कर को अनुग्रहवश '**सप्त-कोटि महामन्त्र**' का उपदेश किया और गंगोत्तरी में रह कर सविधि जप करके सिद्धि प्राप्त करने का सङ्केत किया।"

इस वर्णन से दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—(१) गौडपाद का पतञ्जलिशिष्यत्व एवं (२) विविध-विद्या-पारङ्गतत्व। इसके आधार पर यह भी प्रमाणित होता है कि वे '**वाक्तत्त्व,**

---

१. इनमें से—(१) **श्रीक्रमोत्तम**, में आदि गुरुशिव से शंकर तक की परम्परा है। (२) '**सुमुखी-पूजा-पद्धति**' में ऊर्ध्वतम शिव से गोविन्दपाद तक का यही क्रम है। (३) **श्रीविद्यार्णव**—भी पूर्ववत् परम्परा दिखलाता है और (४) **भुवनेश्वरी-रहस्य**—(पृथ्वीधर रचित) इसके अनुसार पृथ्वीधर श्रीशङ्कराचार्य के शिष्य, गोविन्दपाद के प्रशिष्य एवं श्रीगौडपाद के वृद्धप्रशिष्य थे। द्र० वहीं-पृ. १२-१३,

योगतत्त्व तथा आयुस्तत्त्व' के परमाचार्य पतञ्जलि[1] मुनि से ही प्राप्त व्याकरण, योगदर्शन एवं आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता थे। महर्षि वेदव्यास एवं शुकदेवजी के शिष्य होने के नाते अद्वैत वेदान्त और शाक्तागम का ज्ञान उनका अत्यन्त विस्तृत था और स्वयं साधक-तपस्वी होने के कारण वे उच्चकोटि के सिद्धपुरुष थे।

गौडपादाचार्य का समय

श्रीगौडपादाचार्य का समय निश्चित करने के लिए सबसे उत्तम साधन श्रीशङ्कराचार्य का स्थितिकाल है। आचार्यप्रवर शङ्कर का समय इतिहासकारों की दृष्टि में बहुत ही विवादास्पद बना हुआ है और ईसा से पूर्व छठी शताब्दी के दशक से ईसा के जन्म के पश्चात् उत्तरकाल ४-५ शती तक मानते हैं। वैसे प्राचीनातिप्राचीन कालनिर्णय के बारे में यह कहा जाता है कि—"पूज्य आद्यशङ्कराचार्यजी २० बर्ष की आयु में गतकलि २६१३ में नेपाल पधारे थे, वह समय ईसापूर्व पांचवीं शती के द्वितीय दशक का था। वे जब नेपाल पधारे तब वहां के शासक महाराजा ऋ(वृ)षभदेव थे। वहां वे एक वर्ष तक रहे थे। उसमें १९ दिन प्रमुख महत्त्वपूर्ण थे क्योंकि उन्हीं दिनों में **'अष्टादश प्रबन्धों'** की रचना हुई थी।

आद्यशङ्कर का जन्म गतकलि २५९३ में हुआ था। गतकलि ३०४४ में विक्रम संवत् १ था। गतकलि ३१०० में ईसवी सन् प्रारम्भ हुआ। कलिप्रारम्भ होने के ३९ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर संवत् प्रारम्भ हुआ था। गतकलि २०९० तक युधिष्ठिर संवत् चला इसके बाद ९०० वर्ष नन्द संवत् चला। बाद १३२ वर्ष गुप्त संवत् चला। इसके पश्चात् ११२ वर्ष तक शूद्रक संवत् चला। अर्थात् गतकलि ३०४४ में विक्रम संवत् प्रारम्भ हुआ। वि. सं. के १३५ वर्ष बाद शक संवत् चला और वि. सं. के ५७ वर्ष बाद ईसा सन् प्रारम्भ हुआ। इसके अनुसार आद्यशङ्कराचार्य का जन्म ईसा पूर्व छठी शती के अन्तिम दशक में माना जाता है।[2]

इस दृष्टि से श्रीगौडपादाचार्य का स्थिति काल ईसा से पूर्व ७०० अथवा ८०० वर्ष मान सकते हैं तथा एक महान् योगी होने के कारण इनकी आयु भी १०० से अधिक ही रही होगी।

श्रीगौडपाद की कृतियां

अद्वैत-विद्या में निष्णात आचार्य गौडपाद की कृतियों में अतिप्रसिद्ध **'माण्डूक्यकारिका'**

---

१. पतञ्जलि के सम्बन्ध में यह पद्य प्रसिद्ध है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

२. "जिन मठों में पारम्परिक वंशावली उपलब्ध है, वह मठ में प्रत्येक की स्थापना की तिथि है और वे मठ-विमर्श के अनुसार पांचवें शङ्कर जिनका नाम—'अभिनव शङ्कर' था उन्हें आद्यशङ्कराचार्य मानते हैं।" यह सम्पूर्ण विवरण 'पूज्यपाद स्वामी श्रीविद्यारण्यजी महाराज' के द्वारा निर्दिष्ट है और उन्हीं की कृपा से प्राप्त है।

अपूर्व कृति है। आगमसम्बन्धी ग्रन्थों में एक सूत्रग्रन्थ **'श्रीविद्यारत्न-सूत्र'** प्राचीन स्तुतियों में प्रधान **'सुभगोदय-स्तुति'** एवं **देवीमाहात्म्य का भाष्य 'चिदानन्द-कमल'** माने जाते हैं।

इनमें 'श्रीविद्यारत्नसूत्र' १०३ सूत्रों का एक लघुग्रन्थ है। ग्रन्थ-प्रणयन का लक्ष्य 'श्रीत्रिपुरा-सिद्धान्त' के अनुसार गुरु, देवता एवं आत्मा के ऐक्य का सक्रिय प्रतिपादन है। यही शाक्त अद्वैत है। अतः यह एक दार्शनिक ग्रन्थ भी है। **'अथ शाक्तागममन्त्रजिज्ञासा'** इस प्रथमसूत्र से आरम्भ करके **'अथैतासां परिवाराणामनुपरिवारा असंख्याकाः'** इस सूत्र तक श्रीविद्या का साङ्गोपाङ्ग तात्त्विक स्वरूप दिखाया गया है। इसके सूत्र सुप्रसिद्ध होने के कारण ही भास्करराय मखी आदि अनेक आचार्यों ने अपने भाष्यों-टीकाओं में उद्धृत किये हैं। **'श्रीशङ्करारण्य मुनि'** ने इस पर **'दीपिका'** की रचना भी की है।[1] यह दीपिका २१ वें सूत्र तक ही है। तथा अग्रिम सूत्रों के सम्बन्ध में कह दिया है कि—**इतस्ततः सूत्राणां तात्पर्यं स्पष्टम्। अत एव न व्याख्यातम्।'** किन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। प्रत्येक सूत्र अपने आप में पर्याप्त महत्त्व लिए हुए है, और मन्त्र तथा देवता के संकेतों से परिपूर्ण है। क्या ही अच्छा होता यदि इन पर भी व्याख्यान होता! कुछ टीकाकारों ने अनुष्टुप्-छन्दोबद्ध **'सुभगोदय'** को भी गौडपादाचार्य-रचित ही कह दिया है, किन्तु वस्तुतः वह शिवानन्द-विरचित ही है।

'सुभगोदय-स्तुति'-विमर्श

शिखरिणी छन्द में निर्मित **'सुभगोदय-स्तुति'** में ५२ पद्य प्राप्त हैं, जिनका इस लेख के अन्त में प्रकाशन किया गया है। वाराणसेय सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन में इस स्तोत्र की जिन दो पाण्डुलिपियों का निर्देश **'तान्त्रिक साहित्य'** पृ. ७०८ में म० म० गोपीनाथ कविराजजी ने किया है, उनमें क्रमशः (क) २१६१६ संख्यक प्रति में प्रायः २५० तथा (ख) २१६२१ संख्यक प्रति में २२० पद्यों के होने का उल्लेख है किन्तु वह त्रुटिपूर्ण है।[2]

रचनाकार ने समग्र स्तुति में १ से १५ पद्य तक **'ऐक्यनिरूपण'**; १६ से ३० तक **'मन्त्रचक्रैक्य'** एवं **'ऐक्य'**; ४० से ४१ में **'प्रस्तारत्रय निरूपण'** तथा ४२ से ५२ तक सायुज्य-पदवी-प्राप्ति के उपायभूत कौलाचार और समयाचार के सन्दर्भ में उपासनात्मक सङ्केत दिये हैं। स्तुति की यह भी विशेषता है कि भक्ति-भाव से ओत-प्रोत होने के साथ ही—प्राणायाम, षड्ग्रन्थिभेदन, कुण्डलिनीजागरण, पञ्चतत्त्व-तन्मात्रा और तत्त्वातीत-मिलनपूर्वक परकला-चिन्तन, दहराकाश कमल में कुण्डलिनी की परिणति, त्रिकोण तथा चतुष्कोणात्मक कुलगृह

---

१. इसका प्रकाशन 'श्रीपीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्, वनखण्डेश्वर, दतिया, (म. प्र.) से हुआ है।

२. इन पङ्क्तियों के लेखक ने इन दोनों पाण्डुलिपियों का वहां जाकर अवलोकन किया है किन्तु खेदपूर्वक लिखना पड़ता है कि अब वहां केवल वर्तमान कागजों पर लिखी हुई मूल स्तुति ५२ पद्यों में ही उपलब्ध है टीका आदि नहीं।

में भगवती त्रिपुरसुन्दरी का विहार, मूलाधारादि षट्चक्र, श्रीचक्र, समयि-साधकों का षोढैक्य तथा चतुर्धैक्यादि का निरूपण प्रारम्भिक १५ पद्यों में हुआ है। भगवती के विग्रह में उनके आयुध, यन्त्र, ६४ तन्त्र, पांच शुभागम, एवं कूट-प्रक्रिया से मन्त्रनिर्देश अग्रिम ४ पद्यों में हुआ है जिनमें 'स्मरो मारो मारः स्मर इति परो मारमदनः' इत्यादि १९ वां पद्य विशिष्ट चिन्तनीय है। कादिविद्या, सादाख्याचन्द्रकला (षोडशी), तैत्तिरीय-ऋचासूचित पूजाविधि का सङ्केत, मन्त्र की त्रिखण्डात्मकता, मन्त्राक्षरैक्यपूर्वक स्वरव्यञ्जन प्रत्याहारकथन, संवित्पूजा, पञ्चदशनित्या, ग्रन्थित्रय, यौगिक पूजारहस्य आदि विषय ३० तक प्रस्तुत हैं। प्रस्तारत्रय एवं महीप्रस्तार का दो पद्यों में वर्णन करके ४२वें पद्य से कौलों के वाममत, बाह्य-पूजा, नवव्यूहरूप कौलमत, समयाचारी आराधकों द्वारा की जानेवाली द्विविधा पूजा (आन्तर एवं बाह्य), उत्पत्तिस्थितिलयात्मक श्रीचक्र, पञ्चप्रकृतिक साम्य, उपास्ति-फल—**'सहस्रारे पद्मे सुभगसुभगोदेति सुभगे, परं सौभाग्यं यत्तदिह तव सायुज्यपदवी'** (५१) एवं गुरुकृपा—पूर्वक अहर्निश सूर्य एवं चन्द्र के समान कृतार्थता-प्राप्ति का निर्देश हुआ है।

इस स्तुति की कोई विशिष्ट व्याख्या अब तक उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि स्वयं श्रीशङ्कराचार्य ने इसका भाष्य लिखा था, किन्तु वह लुप्त है। ऐसी उत्तम स्तुति की विस्तृत व्याख्या होने से श्रीविद्योपासकों के लिये अनेक रहस्य उद्घाटित हो सकते हैं और आन्तर-वरिवस्यामूलक समयाचार का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

स्तुति में प्रयुक्त 'सुभगा' शब्द

भगवती के अनन्त नाम हैं। ललितासहस्रनाम में स्पष्ट कहा गया है कि—**'देवी-नामसहस्राणि कोटिशः सन्ति कुम्भज !'** (३०३) और इनमें से मुख्य सहस्र-नाम वशिन्यादि वाग्देवियों के द्वारा 'ललितासहस्रनाम' में कहे गये हैं। चूंकि भगवती का मन्त्र 'पञ्चदशाक्षरात्मक' है अतः इन नामों में उनके पन्द्रह नाम और भी महत्त्वपूर्ण हैं। ये नाम **'त्रिपुरोपनिषद्'** में इस प्रकार वर्णित हैं—

मदन्तिका मानिनी मङ्गला च सुभगा च सा सुन्दरी सिद्धिमत्ता।
लज्जा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा लक्ष्मीरुमा ललिता लालपन्ती ॥६॥

इन नामों में चौथा नाम **'सुभगा'** है। वेदों में **'सरस्वती वा सुभगा'** कह कर सरस्वती का नाम भी इसे बताया है।[1] शोभना भगा ऐश्वर्यादयोऽस्याः सन्तीति सुभगा' ऐसी व्युत्पत्ति दिखलाते हुए 'श्रीराघवानन्दतीर्थ योगीन्द्र' के शिष्य **'श्रीरामानन्द'** ने अपने

---

१. श्रुतियों में 'भग' शब्द का बहुधा उल्लेख हुआ है। यथा—

(क) **आस्ते आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठतश्च तेन पद्यमानस्य चरति चरतो भगः। इति।**

(ख) **अथ कस्मादुच्यते भगवानिति ? यः सर्वान् भावानीक्षति आत्मज्ञानं निरीक्षयति योगं गमयति, तस्मादुच्यते भगवानिति। इत्यादि।**

भाष्य[1] में विवेचन किया है। इसमें 'भग' शब्द—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणात्॥ (विष्णुपुराण)

के अनुसार षडैश्वर्य का वाचक है। प्रस्तुत उपनिषद् में ही अन्यत्र **'भगः शक्तिर्भगवान् काम ईश उभा दाताराविह सौभगानाम्'** (१४) में भग शब्द का भाष्यकार ने **'सौभाग्यलक्ष्मी'** और **'शक्ति'** अर्थ किया है तथा 'भग एव भगवाँ अस्तु' इत्यादि श्रुति के अनुसार **'भग'** को **'भगवान्'** का वाचक भी व्यक्त किया है। श्रीभास्करराय मखी ने उपर्युक्त उपनिषन्मन्त्र के भाष्य में 'भग' शब्द का ईश अर्थ मानकर 'ईश के शरीरघटक जितने भी धर्म हैं, वे सब भग-पद से ग्राह्य माने हैं और यही धर्मसमूह शक्ति है' ऐसा कहा है। अत एव भगवती सुभगा-त्रिपुरसुन्दरी की उपासना 'सौभग'=धर्मार्थकामप्रदात्री है।

'ललितासहस्रनाम' में भी **'सुभगा'** नाम (७६१ वां) प्रोक्त है। इसका विवेचन करते हुए **'सौभाग्य-भास्कर-व्याख्या'** में भास्करराय मखी ने स्पष्ट किया है कि—'पांचवर्ष की कन्या 'सुभगा' कही जाती है क्योंकि **'सुभगा पञ्चवर्षा स्यात्'** ऐसा महर्षि धौम्य का वचन है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी श्री तत्स्वरूपा ही है। अथवा श्री, काम, माहात्म्य, वीर्य, यत्न, कीर्ति आदि भगपदवाच्य तत्त्व जिसमें उत्तमरूप से विद्यमान हैं वह सुभगा है।[2] किं वा जिसके द्वारा सूर्य शोभायमान है, वह। क्योंकि सूर्य सम्बन्धी सभी कार्यों में अन्तर्विराजमान होने से यही शक्ति निमित्तभूत हैं। यह बात **'विष्णुपुराण'** के द्वितीय अंश में प्रतिपादित है। यथा—

श्रीविष्णु की परा शक्ति ऋग्, यजुः और सामरूप है। यही त्रयी तपती है और जगत् के पाप का विनाश करती है। प्रत्येक मास में जहां-जहां रवि रहता है, वहाँ यह पराशक्ति व्याप्त रहती है। त्रयीमयी विष्णुशक्ति ही सूर्य में निवास करती है। प्रातः ऋग्, मध्याह्न में यजुः और सायाह्न में बृहद्रथन्तरादि साम ही तपते हैं। अतः विष्णु की मूर्ति को त्रयीमयी ऋग्-यजुःसामरूप कहा है। विष्णुशक्ति सूर्य में सदा निवास करती है। केवल सूर्य में यह त्रयीमयी विष्णु की शक्ति ही है अपितु ब्रह्मा विष्णु और शिव ये तीनों ही त्रयीमय हैं। शक्ति-रूपधारी विष्णु न उदय होता है और न अस्त, अपि तु विष्णु से पृथक् सूर्य के सप्त गण भी उसी शक्ति से प्रेरित होते हैं। जिस प्रकार खम्भे में लगे हुए दर्पण में छाया पड़ने से व्यक्ति निकटस्थ माना जाता है, उसी प्रकार यह शक्ति वहां से नहीं जाती है अपि तु वहीं चिर-निवास करती है। अर्थात् '१-देव, २-ऋषि, ३-गन्धर्व, ४-अप्सराएँ, ५-यक्ष, ६-सर्प और ७-

---

१. यह भाष्य **'श्रीत्रिपुरोपनिषद्-भाष्यद्वयोपेता'** के नाम से **'वेदमीमांसानुसन्धान-केन्द्र, वाराणसी'** से **पूज्यश्रीपट्टाभिराम शास्त्रीजी** के सम्पादकत्व में मुद्रित है।

२. भगमैश्वर्यमाहात्म्यज्ञानवैराग्ययोनिषु।
यशोवीर्यप्रयत्नेच्छा श्रीधर्मरविमुक्तिषु। (विश्वकोष)

राक्षस' ये सप्त गण सूर्य के उपकरण होने के कारण प्रतिमास भिन्न होनेवाले सूर्य से भिन्न-भिन्न होते हैं किन्तु शक्ति प्रधान होने कारण पृथक् नहीं होती।[1]

अथवा तीनों लोक में जो चराचरगत-सौभाग्य है, वह इसी भगवती का रूप है, अतः यह सुभगा है। इसमें **चर-सौभाग्यरूपा** सुवासिनियां हैं और **अचरसौभाग्य-वस्तु 'पद्मपुराण'** के अनुसार **१-इक्षु-ईख, २-उत्तमकुल-वृक्ष, ३-निष्पावा-सेम, ४-जीरक और धान्य** (तुषरहित), **५-विकारयुक्त गोदुग्ध, ६-कुसुम्भ, ७-कुसुम और ८-लवण** ये सौभाग्याष्टक हैं।[2] पद्मपुराण में सुवासिनी-पूजन का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है कि—स्वर्ग-सौभाग्यमयी और भुक्ति-मुक्तिदात्री भगवती सुभगा-उमा अथवा सुवासिनी नारी की आराधना करके मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता? अपि तु सभी कुछ प्राप्त कर सकता है।[3] और इस नाम से पूर्व आये हुए **'१-विश्वधारणी** तथा **२-त्रिवर्गदात्री'** नाम भी 'सुभगा' पद की निरुक्ति को ध्वनित करते हैं अर्थात् विश्वधारण और त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम का प्रदान करने वाली भी भगवती 'सुभगा' ही है।

---

१. सर्वा शक्तिः पराविष्णोर्ऋग्यजुःसामसंज्ञिता।
सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या॥
मासि मासि रविर्यत्र तत्र तत्र हि सा परा।
त्रयीमयी विष्णुशक्तिः स्वस्थानं च करोति वै॥
ऋचस्तपन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्ने तु यजूंषि वै।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षये रवौ॥
मूर्तिरेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यजुः सामसंज्ञिता।
विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति या॥
न केवलं रवौ शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत् त्रयीमयम्॥
नोदेता नास्तमेता च कदाचिच्छक्तिरूपधृक्।
विष्णुर्विष्णोः पृथक् तस्य गणः सप्तमयोऽप्ययम्॥
स्तम्भस्थदर्पणस्येव योऽयमासन्नतां गतः।
छायादर्शनसंयोगं स तं प्राप्नोत्यथात्मनः॥
एवं सा वैष्णवी शक्तिर्नापैति ततो द्विज।
मासानुमासं भास्वन्तमध्यास्ते तत्र संस्थितम्॥ इति॥

२. इक्षवस्तरुराजं च निष्पावा जीरधान्यके (?)।
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुसुमं तथा॥
लवणं चेति सौभाग्याष्टकं स्थावरमुच्यते॥

३. त्रिविष्टपसौभाग्यमयीं (?) भुक्तिमुक्तिप्रदामुमाम्।
आराध्य सुभगां भक्त्या नारीं वा किं न विन्दति?॥

'दुर्गासप्तशती' के प्राधानिक रहस्य में भी **'सुन्दरी सुभगा शुभा'** (२३) कहकर इनकी पुरुषत्व प्राप्ति का उल्लेख है। पति का परमानुराग प्राप्त होने से भी भगवती को 'सुभगा' कहा जाता है। इसीलिये आचार्य प्रवर ने इस नाम को अपना आराध्य बनाया और स्तुति की रचना की।[1]

---

१. सुभगा देवी की उपासना के सम्बन्ध में अन्य निम्नलिखित अप्रकाशित ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं—

१-सुभगार्चनापद्धति

लि०-श्लोक सं० १००० । अ० ब० ६६४४

२-सुभगार्चापारिजात

सौभाग्यभास्कर और सेतुबन्ध में इस ग्रन्थ का उल्लेख है।

३-सुभगार्चारत्न

लि०—(१) रामचन्द्र विरचित। इसमें ८ तरंग हैं। उनमें लक्ष्मीपूजा, मन्त्र, मुद्रा आदि विषय वर्णित हैं। ए० बं० ६३४२

(२) आगमी रामचन्द्र कृत, (क) श्लोक सं० ५००। (ख) श्लोक सं० ५००। (ग) श्लोक सं० ५००। —अ० ब० (क) ६६३८ (ख) १०२६१, (ग) १०६१।

(३) इसमें ८ मयूख (?) हैं तथा सुभगादेवी की पूजाविधि प्रतिपादित है।

(४) श्लोक सं० ४६८ (चतुर्थ मयूख तक) र० मं० ४८६६

(५) रामचन्द्र कृत, पूर्ण। —टे० का० ५०२ (१८७५-७६ ई०)

(६) (क) श्लोक सं० ३४८, अपूर्ण (ख) रामचन्द्र विरचित, श्लोक सं० लगभग ६००, पूर्ण। लिपिकाल सं० १७६६ वि० (ग) श्लोक सं० लगभग २६६। लिपिकाल १७६८ वि०। इसका नामान्तर-**सुन्दरीपद्धति** है। सम्भवत: यह ऊपर लिखे दो ग्रन्थों (क) और (ख) से अतिरिक्त है।

—सं० वि० (क) २५१६६, (ख) २५८६६, (ग) २६५६६

—कैट्. कैट्. १। ७२७

४-सुभगोदयदर्पण

लि०—(१) यह ललितादेवी की पूजा का प्रतिपादक है। ग्रन्थकार ने कहा है—'**ललितायाः सभेदायाः पूजाविधिरत्र वर्णितः**' दस प्रकार के 'मातृकादि मन्त्र' के 'न्यासादि का क्रम' भी इसमें कहा गया है। तदनन्तर पुरश्चरण—१००० बार या १०० बार मन्त्रजप करने का विधान है। —बी० कै० १३३८

(२) श्रीनिवास राजयोगीश्वरविरचित, पूर्ण। यह शक्ति की पूजा का प्रतिपादक है। —म० द० ५७५४

सुभगोदय-स्तुति में वर्णित 'आचार' तथा उनकी मीमांसा

'सुभगोदय-स्तुति' केवल स्तुति ही नहीं है, अपितु इसमें आगम-सम्मत अनेक तथ्यों का निर्देश भी संवलित है। पहले पद्य में ही **'वासरमयी'** कहकर दिननित्याओं की ओर सङ्केत किया है, जिनकी पूजा श्रीचक्र में विहित है तथा साधक को प्रतिदिन स्वतन्त्ररूप से इनके मन्त्रों का जप भी करना होता है। षट्चक्रभेदनपूर्वक कुण्डलिनी-जागरण के लिये भी अनेक सङ्केत एवं 'प्राणायामादिसहित तादात्म्य-स्थापन'-वर्णित हैं। यहीं साधक को **'महायोगिसमयी'** पद से सम्बोधित किया है। इसी धारा में १-**कुलाचार**, २-**समयाचार** एवं ३-**मिश्राचार** के भी निर्देश हैं।[1] अतः इन आचारों का भी संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है।

१-कुलाचार—

आगमों के अनुसार सर्वप्रथम शाक्तों के दो प्रकार हैं १-**कौल** और २-**समयी**। इनमें भी **'कौल'** दो प्रकार के बतलाये गये हैं—१-**पूर्वकौल** तथा २-**उत्तरकौल**। पूर्वकौलों के तीन प्रकार माने जाते हैं—१-**मूलाधारनिष्ठ**, २-**स्वाधिष्ठाननिष्ठ** तथा ३-**उभयनिष्ठ**। उत्तरकौल चार प्रकार के होते हैं—१-**मातङ्गीतन्त्रनिष्ठ**, २-**वाराहीतन्त्रनिष्ठ**, ३-**कोलमुखीतन्त्रनिष्ठ** एवं ४-**भैरवीतन्त्रनिष्ठ**। इस सम्बन्ध में **'सुभगोदय'** ग्रन्थ के **'कौलभागपटल'** में कहा गया है कि—

मूलाधारे स्वाधिष्ठाने च भजन्ति केचनेशानीम्।
अन्यतरस्मिंश्चान्ये तेनैव पूर्वाः कौलिनस्त्रिविधाः॥
मातङ्गी-वाराही-कोलमुखी-भैरवीमतस्थास्ते।
आन्तरपूजारहिता उत्तरकौलाश्चतुर्विधा ज्ञेयाः॥

कौलमार्ग में त्रिकोण ही बिन्दुस्थान है और वही उनका आराध्य है। पूर्वकौल श्रीयन्त्रस्थ त्रिकोण की पूजा करते हैं तथा दिगम्बर-क्षपणक आदि उत्तरकौल प्रत्यक्ष त्रिकोण की पूजा करते हैं। त्रिकोण में विराजमान कुण्डलिनी शक्ति ही 'कौलिनी' कहलाती है। कुण्डलिनी निद्रितस्वभावा होने से उसका पूजन भी उसी अवस्था में किया जाता है और जब प्रबोध

५-सुभगोदयवासना

चिद्वल्ली में उद्धृत।

६-सुभगोदयटीका

लक्ष्मीधर विरचित।

उल्लेख—सौन्दर्यलहरी की टीका 'लक्ष्मीधरी' में।

१-श्री भास्करराय मखी ने भी 'ललितासहस्रनाम' के 'भास्करी-भाष्य'स्थ **कुल-कुण्डलया कौलमार्गतत्परसेविता'** (श्लोक १४४) की व्याख्या में श्रीविद्योपासकों के इन्हीं तीन आचारों-मतों का उल्लेख किया है।

हो जाता है तो तत्क्षण कौलों की मुक्ति हो जाती है। **'क्षणमुक्ताः कौलाः'** इस उक्ति का यही रहस्य है। इस आचार में पञ्चमकार संसेव्य होने से इसे अवैदिक माना गया है। कौलाचार का तात्पर्य 'बाह्यपूजा' भी है। जैसा कि **'सनत्कुमार-संहिता'** का वचन है—

बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च दिगम्बराः।
कापालिका वीतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः॥

इसके अनुसार कौल आधारचक्र-पूजक हैं। क्षपणक प्रत्यक्षपूजक हैं। कापालिक और दिगम्बर उभयमार्गी हैं। इतिहास अथवा वीतिहास भैरव-यामल-प्रामाण्यवादी हैं। तथा वामक तन्त्रवादी अथवा वामकेश्वरतन्त्र के माननेवाले हैं। इनका अनुष्ठान-कलाप शूद्रादि-सेव्य होने से अपसव्यमार्ग का अनुसरण करता है, अतः उसे 'वामाचार' कहते हैं। यह मार्ग वेदबाह्य होने से ही त्याज्य बतलाया गया है—

मिश्रकं कुलमार्गं च परित्याज्यं हि सुन्दरि ! । इति।

२-समयाचार—

जिस प्रकार 'कुलाचार' में 'कुल' शब्द अत्यन्त रहस्यपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण माना गया है और इसकी विभिन्न व्युत्पत्तियों के आधार पर विभिन्न अर्थ किये गये हैं, उसी प्रकार 'समयाचार' में **'समय'-'समया'** शब्द परमरहस्यपूर्ण हैं। **"सम् अयः शुभावहो विधिः येषामस्तीति समयः"** इसके अनुसार उत्तम भाग्यशाली अथवा उत्तम विधि का आचरण करना 'समय' का अर्थ है। तथा-**'सम्यग् अयति सहस्रकमलं गच्छति इति समया कुण्डलिनी'**-जो उत्तम प्रकार से सहस्रार तक पहुंचती है, वह 'कुण्डलिनी' ही **'समया'** है। समय और समया के पूजकों का आचार ही समवाचार है। इस आचार के अनुसार पूजा करनेवाले **'समयी'** कहलाते हैं। समयी का अर्थ 'समीचीन' अत्युत्तम भी होता है 'समयिनो नाम समीचीनाः'।

समयपूजकों के चार प्रकार मान्य हैं—

(१) स्वर्णादिरचित चक्रविग्रहों में वैदिक-विधान से अर्चनारत।
(२) आन्तरिक एवं बाह्य अर्चना में रत।
(३) केवल आन्तरिक अर्चनारत (अन्तर्यागी)।
(४) पूजादि-विरत।

इन चतुर्विध समयि-साधकों का निदर्शन **'सुभगोदय'** में इस प्रकार वर्णित है—

बहिरेव केचिदपरे बहिरन्तः केचनान्तरीशानाम्।
आराधयन्ति कतिचिन्नैवाम्बां समयिनस्तुरीया हि॥

इनकी चतुर्विधता का विश्लेषण योग-साधना की तर-तमता पर निर्धारित है। यथा—

१-असञ्जात-योग साधक,
२-किञ्चित् योगसिद्धि प्राप्त,

३-सिद्ध-योग

४-निर्गुणब्रह्माभेदानुसन्धायी।

इनमें प्रथम तीन स्वेच्छया गृहीत शरीरवाली एवं संस्कार के सदृश आकारवाली सहस्रनेत्रा भगवती की यथोपलब्ध योगानुसार अर्चना करते हैं। किन्तु चतुर्थ स्थितिवाले-चित्तशुद्धि हो जाने के कारण निर्गुणब्रह्म के साथ अपना अभेदसन्धान करते हुए, पूज्य और पूजक के बीच पार्थक्य नहीं मानते; क्योंकि ऐसा भेदानुसन्धान साधना में प्रत्यवायरूप होता है, अतः अपने समस्त व्यापार को ही भगवती की पूजारूप मानते हैं। आद्य शङ्कराचार्य ने **'सौन्दर्य-लहरी'** में ऐसी ही साधना को लक्ष्य में रख कर कहा है—

> **जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना,**
> **गतिः प्रादक्षिण्य-क्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।**
> **प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पण-दृशा,**
> **सपर्या-पर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्॥**[1]

समयी योगीश्वर जीवन्मुक्त होकर संसारयात्रा करते हुए सादाख्य तत्त्व का अनुचिन्तन-पूर्वक आत्मैक-प्रवण होते हैं। उन्हें यह भी इसलिये करना पड़ता है कि— उनकी अविद्या-निवृत्ति हो जाने पर भी 'कुलाल-चक्र-भ्रमणन्याय' से देहबन्ध रहता है। जैसा कि 'सांख्य कारिका' का वचन है—

> **सम्यग् ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणत्वप्राप्तौ।**
> **तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद् धृतशरीरः॥**[2]

'समयाचार' का विशेष परिचय **डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी**, (वैष्णवाश्रम, खजूरीताल, जिला-सतना, म० प्र०) ने अपने **'समयाचार'** शीर्षक (**'सन्मार्ग'** तन्त्र-विशेषाङ्क) एक लेख में बहुत ही महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। अतः हम उसका उपयोगी अंश यहां पाठकों की जानकारी के लिये यथावत् साभार दे रहे हैं, जो इस प्रकार है—

"ललिता सहस्रनाम" के भाष्य में भास्कर राय ने—

> **"कुलाङ्गना कुलान्तःस्था कौलिनी कुलयोगिनी।**
> **अकुला समयान्तस्था समयाचारतत्परा॥३७॥**

१-शिव-भक्त रावण ने **'शिवताण्डव-स्तोत्र'** में भी ऐसे ही भाव से युक्त यह पद्य दिया है—

> **आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,**
> **पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधि-स्थितिः।**
> **सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,**
> **यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो! तवाराधनम्॥**

२-समयमत-सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण का मूल देखिये 'त्रिपुरोपनिषद् भाष्य' रामानन्द साधकरचित, मन्त्र-११।

में **"समयान्तस्था"** एवं **"समयाचारतत्परा"** नामों की व्याख्या करते हुए **'समय'** के निम्न अर्थ बताए हैं[1]—

(१) परम्परागत रीति-रिवाज।

(२) दहराकाश में चक्र की भावना करते हुए पूजा-विधान की योजना।

(३) समयाचार मार्ग के प्रतिपादक वसिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन, सनत्कुमार द्वारा विवेचित संहितापञ्चक **'शुभागम-पञ्चक'**।

(४) शुभागमपञ्चक में विहित आचार।

(५) साम्य को प्राप्त = 'साम्यं यातीति समया भगवती'।

(६) शिव-शक्ति का साम्य-भाव। 'समय' (शिव) + समया (शिवा) का साम्यभाव।

"शम्भुना पञ्चविधं साम्यं याति इति समया भगवती महात्रिपुरसुन्दरी"—अर्थात् पाँच प्रकार के शम्भु के साथ साम्यभाव प्राप्त करने के कारण भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही **'समया'** कहलाती हैं। शम्भु भी **'समय'** शब्द से अभिहित किए जाते हैं क्योंकि उनका समया के साथ सम = प्रधान भाव से साम्य है। 'समय' के उपासक ही **'समयी'** कहलाते हैं तथा उनकी उपासना पद्धति **"समय-मार्ग"** कही जाती है।

---

१. भाष्य का मूल पाठ इस प्रकार है—

"दहराकाशावकाशे चक्रं विभाव्य तत्र पूजादिकं समय इति रूढ्योच्यते। स च सर्वैर्योगिभिरैकमत्येन निर्णीतोऽर्थ इति सङ्केतरूपत्वादपि समयः। तत्प्रतिपादकत्वाद् "वसिष्ठशुकसनकसनन्दनसनत्कुमाराख्यतन्त्रपञ्चक"मपि समयपदेन व्यवह्रियते, तदन्तस्तत्प्रतिपाद्यतया तिष्ठति। यद्वा। समं साम्यं यातीति समयः शिवः। 'आतोऽनुपसर्गे कः' समयादेवी च तयोरेकशेषः। साम्यं च परस्परं शिवशक्त्योः पञ्चविधं—अधिष्ठानसाम्यमनुष्ठानसाम्यमवस्थानसाम्यं नामसाम्यं रूपसाम्यं चेति। अधिष्ठानं पूजाधिकरणं चक्रादि। अनुष्ठानं सृष्ट्यादिकृत्यम्, अवस्थानं नृत्यादिक्रिया। नाम भैरवादि। रूपमारुण्यादि। अस्य च विस्तरो **'वासनासुभगोदय'**व्याख्याने लल्लेन कृतः। तयोरन्ते स्वरूपे तिष्ठति। 'अन्तः प्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपेऽतिमनोहर'इति विश्वः। **'रुद्रयामले'** दशभिः पटलैरुपदिष्ट आचारः **'समयचार'** इत्युच्यते। यद्वा। दीक्षितस्य गुरुकटाक्षवशात् षड्विधैक्यचतुर्विधैक्यान्यतरानुसन्धानदार्ढ्ये महावेधाख्यसंस्कारे च महानवम्यां जाते सति पश्चान्मूलाधारादुत्थिता देवी मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति। तां तत्रैव पाद्यादि-भूषणान्तैरुपचारैः सम्पूज्यानाहतं नीत्वा ताम्बूलान्तमभ्यर्च्य विशुद्धिचक्रं नीत्वा तत्रत्यचन्द्रकलारूपैर्मणिभिः पूरयित्वा आज्ञाचक्रं नीत्वा नीराज्य सहस्रदलकमले सरघामध्ये सदाशिवेन संयोज्य तिरस्करिणीं प्रसार्य समीपमन्दिरे स्वयं स्थित्वा यावद् भगवती पुनर्निर्गता सती मूलाधारकुण्डं प्रविशति तावत्तत्रैव समयं प्रतीक्षेतेत्याकारो गुरुमुखैकवेद्यः **'समयाचारः'**। तयोरुभयविधयोरपि तत्परा आसक्ता। इति।" (—सम्पादकः)

समय एवं समया में साम्य— समप्रधानभावापन्न 'समया' एवं 'समय' में पञ्चविध साम्य है : (१) **अधिष्ठान-साम्य,** (२) **अनुष्ठान-साम्य,** (३) **अवस्थान-साम्य,** (४) **नाम-साम्य** तथा (५) **रूप-साम्य** ।

१. **अधिष्ठान-साम्य** : दोनों मूलाधार चक्र के अधिष्ठान हैं ।

२. **अवस्थान-साम्य** : दोनों नृत्यावस्था में स्थित हैं (**लास्य+ताण्डव**) ।

३. **अनुष्ठान-साम्य** : सृष्टि-विधान में दोनों का पारस्परिक सहयोग है ।

४. **नाम-साम्य** : 'नवात्मा' शब्द से दोनों का अभिधान होता है । (शिव+शिवा)

५. **रूप-साम्य** : दोनों के ही रूप अरुण हैं ।

"**रुद्रयामल तन्त्र**" के दस पटलों में उपदिष्ट आचार को भी 'समयाचार' कहते हैं ।

'षड्विध ऐक्यानुसन्धान'रूप महावेध-संस्कार में, सहस्रदलकमल में प्रविष्ट शक्ति के पुन: आधारकमल में प्रत्यावर्तन तक की प्रतीक्षावधि को भी 'समयाचार' कहते हैं । समयाचार" नाम के तन्त्र में पूजा-संकेत को भी 'समय' की आख्या दी गई है । विजया आदि द्रव्यों के ग्रहण का अभिधान भी "समय" ही किया गया है । समयाचार का ग्रन्थ "**सौन्दर्यलहरी**" की लक्ष्मीधरी टीका है । आचार्य गौडपाद के ग्रन्थ "**सुभगोदय**" (?) को दृष्टि में रखकर भगवत्पाद शङ्कर ने "**सौन्दर्य-लहरी**" ग्रन्थ का प्रणयन किया । 'सौन्दर्य-लहरी' की लक्ष्मीधरी टीका 'समयाचार' का प्रधान ग्रन्थ है । '**शुभागमपञ्चक**' के अप्राप्य होने के कारण उक्त टीका तथा '**ललितासहस्रनाम**' का भास्करराय-प्रणीत भाष्य "समयमत" के स्वरूप-विवृति के आधार-ग्रन्थ माने जाते हैं ।

'सौन्दर्यलहरी' के अष्टम श्लोक की टीका के प्रसङ्ग में लक्ष्मीधर समयमत की मीमांसा का संकेत देते हुए कहते हैं—"समय मत के पारदृश्वा भगवान् शङ्कराचार्य समया-रूपा भगवती की स्तुति करते हैं । समयाचार आन्तर पूजा को एवं कौलाचार बाह्यपूजा को कहते हैं ।"

उपर्युक्त पञ्चविध साम्य-विधान का 'समयाचार' अभिधान में पुष्कल योग है । पञ्चविध-साम्य की विद्वानों ने एकविध ही नहीं प्रत्युत अनेकविध मीमांसाएँ की हैं ।

"समयि"—"सह मया वर्तते" "वह मेरे साथ है"—इसी सत्य की अनुभूति करने हेतु जिस आचार में "समया" की उपासना की जाती है उस शाक्त सम्प्रदाय को 'समयाचार' का अभिधान दिया गया है ।

समयमत का साहित्य—समयमार्ग का मूल स्रोत '**शुभागमपञ्चक**' है, जो इस प्रकार है : (१) वसिष्ठसंहिता, (२) सनकसंहिता, (३) सनन्दनसंहिता, (४) सनत्कुमारसंहिता, (५) शुकसंहिता । इसके अतिरिक्त 'सौन्दर्य-लहरी' की "लक्ष्मीधरी टीका" भी (वर्तमान काल में) श्रेष्ठतम उपलब्ध ग्रन्थ है, क्योंकि शुभागम-पञ्चक उपलब्ध ही नहीं है ।

भास्करराय मखिन् का "ललितासहस्रनाम" पर प्रणीत भाष्य भी इस मत की व्याख्या

करने बाला प्रामाणिक ग्रन्थ है। ब्रह्मसूत्र के शक्तिभाष्य भी इसी मत के प्रामाणिक ग्रन्थ कहे जा सकते हैं, किन्तु उन्होंने भी लक्ष्मीधरी टीका का ही उद्धरण दिया है। अतः उपलब्ध साहित्य में लक्ष्मीधरी टीका ही समयमत का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है।

श्रीविद्योपासना एवं समयमत—'ललितासहस्रनाम' के भास्करी भाष्य में "कुल-कुण्डालया कौलमार्गतत्परसेविता" (श्लोक १४४) की व्याख्या करते हुए आचार्य भास्कर-राय ने श्रीविद्या की उपासना करनेवाले मतों में निम्न तीन मतों का उल्लेख किया है—(१) समय-मत (२) कौल-मत एवं (३) मिश्र-मत। इनमें वैदिकमार्गानुसारी आचार "समय मत" ही है। तन्त्र के सप्ताचारों की दृष्टि से 'समयाचार' दक्षिणाचार से सम्बद्ध है तथा "शुद्ध-तन्त्र" माना जाता है। इस प्रकार शाक्त-सम्प्रदायों में समयाचार-सम्प्रदाय वैदिक आचार-प्रधान सम्प्रदाय है। तान्त्रिक आचार-मार्गों में मुख्यरूप से दो ही आचार हैं, जो इस प्रकार हैं : (१) कौलाचार और (२) समयाचार। शंकराचार्य समयाचार के अनुयायी थे।

पूजा-विधान—श्रीचक्र-यन्त्र की पूजा का विधान सभी शाक्तसम्प्रदायों में है। इसे ही "वियत् यूजा" की भी आख्या दी गई है। यह पूजा (१) **दहराकाश** एवं (२) **बाह्याकाश** दोनों में अनुष्ठित होती है। बाह्याकाशगता पूजा **कौलों की पूजा** है। हृदयाकाश में अनुष्ठित श्रीचक्र की पूजा **सामयिकों की पूजा** है। यह दहराकाश एवं सहस्रदल कमल में सम्पन्न होती है। दहराकाश-गता पूजा से ऐहिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। एतदर्थ होम, तर्पण भी विहित हैं किन्तु ऐहिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियों के लिए (समयमत में) आन्तरपूजा का ही विधान किया गया है, बाह्यपूजा का नहीं। कौल प्रत्यक्ष मकारपञ्चक के उपासक हैं, तो समयी प्रतीकात्मक मकारपञ्चक के। बाह्याकाशगता पूजा कौलपूजा कही जाती है। दहराकाश-पूजा 'समय-पूजा' कही जाती है। सृष्टिक्रम की पूजा समयाचारियों की एवं संहारक्रम की पूजा कौलों की है।

समयाचार में मकार-पञ्चक का अर्थ—

(१) '**मद्य**'—व्योमपङ्कजनिस्यन्दसुधापानरतो नरः।
मधुपायि-समः प्रोक्तस्त्वितरे मद्यपायिनः ॥

(२) '**मांस**'—पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं मांसाशी स निगद्यते ॥

(३) '**मत्स्य**'—गङ्गायमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः ॥

(४) '**मुद्रा**'—सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेषु बन्धनम्।
असङ्गमुद्रणं यत्तु तन्मुद्राऽत्र प्रकीर्तिता ॥

(५) '**मैथुन**'—इडापिङ्गलयोः प्राणान् सुषुम्नायां प्रवर्तयेत्।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः।
तयोस्तु सङ्गमे देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ॥

समयमत की साधना-पद्धति—श्री सुन्दरी की उपासना द्विविध प्रकार से होती है जिसे (१) बहिर्याग एवं (२) अन्तर्याग कहते हैं। समयाचारी अन्तर्यागात्मक पूजा करते हैं :— इस मत में बाह्यपूजा के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः इनकी पूजा दहराकाश एवं सहस्रार में ही सम्पन्न होती है :—

"समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति। बाह्यपूजा-होमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव। हृत्कमलमेवं सर्वं यावदनुष्ठेयम्।"

समयाचारी वैदिक आचार-विचार का आत्मीकरण करते हुए 'श्रीविद्या' की आन्तर उपासना करते हैं। प्रभात स्नान, सन्ध्यावन्दन, मध्याह्न जप, पुरोडाशादिक का अशन, स्वस्त्री के साथ सम्भोग को ही ये विधेय मानते हैं न कि मदिरादिक को। नित्य पञ्चयज्ञ का विधान भी इन्हें मान्य हैं, किन्तु ये **'आन्तर-पूजा'** पर बल देते हैं। ये मातृ-उपासक हैं, क्योंकि समय-मार्ग में श्रीविद्या की ही उपासना का विधान है।

इनकी उपसना का लक्ष्य है मूलाधारप्रसुप्ता कुण्डलिनी का योगविधि से **प्रबोधन** करके सहस्रारस्थ शिव के साथ सामरस्य कराना। दहराकाश में श्रीचक्र की कल्पना करके पूजाविधानात्मक **'समय' नामक अन्तर्याग के द्वारा** ही ये **सामरस्य की प्राप्ति** कराते हैं। इसी-लिए सम्प्रदाय को **'समयाचार'** कहते हैं। सहस्रार के मध्य चतुष्कोण चन्द्रमण्डल ही समया-चारियों का **'बिन्दुस्थान'** है जिसे वे **"सुधासिन्धु"** या **"सरघा"** भी कहते हैं। समयाचारी इसी 'सरघा' में 'समय' एवं 'समया' की आन्तरपूजा करते हैं। इसकी दृष्टि में बाह्य त्रिकोणादि में पूजन हेय है। अन्तिम स्थिति में कौल एवं समयाचारियों में कोई भेद नहीं रह जाता, किन्तु इसके पूर्व दोनों में यथेष्ट भिन्नता है।

श्रीचक्र की साधना का लक्ष्य है—ज्ञाता (साधक), ज्ञान (श्रीचक्र), ज्ञेय (त्रिपुरा) में तादात्म्य की प्राप्ति कराना। यह चक्र 'श्रीयन्त्र' कहलाता है जिसकी अधिष्ठात्री देवी ललिता या महात्रिपुरसुन्दरी है। इस यन्त्र के अन्दर अनेक चक्र हैं जो कि 'सर्वानन्दमय' नामक बिन्दु से विकसित हुए हैं। श्रीयन्त्र के मध्य में पराशिवशक्ति स्थित हैं।

समयमत का तात्त्विक रहस्य—

सूर्य-चन्द्र दोनों का देवयानपितृयाणात्मक इडा-पिंगला मार्ग से अहोरात्र सञ्चरण होता रहता है। 'चन्द्र' वामनाडी मार्ग से संचरण करता हुआ द्विसप्ततिसहस्र नाड़ी मार्ग को अमृत से सिंचित करता है। सूर्य दक्षिणनाड़ी मार्ग से संचरण करता हुआ तदुत्क्षिप्त अमृतबिन्दुओं का शोषण करता है। जब सूर्य-चन्द्र दोनों का आधारचक्र में समावेश होता है तब **'अमावस्या'** तिथि का आविर्भाव होता है और उससे ही कृष्णपक्ष की तिथियों का उन्मेष होता है। कुण्डलिनी शक्ति सूर्यकिरण के सम्पर्क के कारण चन्द्रमण्डल-मध्य से निःसृत पीयूष के द्वारा परिपूरित आधारकुण्ड में सोती है। कुण्डलिनी की यह निद्रावस्था ही **"कृष्णपक्ष"** है। जब योगी समाहित-

चित्त होकर चन्द्र को चन्द्रस्थान में एवं सूर्य को सूर्यस्थान में वायु के द्वारा निरुद्ध करने हेतु सक्षम होता है तब चन्द्र-सूर्य निरुद्ध अमृत के आहरण में अशक्त हो जाते हैं। अमृतकुण्ड में सुप्त कुण्डलिनी निराहार होने के कारण जाग्रत् होकर सर्पवत् फूत्कारपूर्वक ग्रन्थित्रय का भेदन करती हुई सहस्रदलकमल के मध्यवर्ती चन्द्रमण्डल को डस लेती है। परिणामस्वरूप उसमें से अमृतधारा निकल पड़ती है। इस अमृतधारा के द्वारा आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती हुई तत्क्षरित चन्द्रामृत से समस्त शरीर को आप्लावित कर देती है।

"सहस्रदलपद्म" में स्थित **चन्द्रमण्डल, चक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल से भिन्न है।** आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित **चन्द्रमा की कला पञ्चदश नित्याएं** हैं। ये कलाएँ आज्ञा-चक्र के नीचे विशुद्धचक्र में परिवर्तित होती हैं। सहस्रदलस्थ चन्द्रमण्डल ही **चित्कलायुक्त बिन्दुस्थान** है। योगियों को कृष्णपक्ष का त्याग करके शुक्ल में ही कुण्डलिनी-जागरण करना चाहिए। शुक्लपक्ष की समस्त तिथियां **'पूर्णमासी'** कही जाती हैं। कृष्णपक्ष की अमावस्या के अन्तर्गत होने के कारण अमावस्या ही कृष्णपक्ष है।

सूर्य-चन्द्र की गति का निरोध एवं मूलबन्ध, उड्डीयान बंध, जालन्धर बन्ध के अभ्यास से सम्पन्न होकर सुषुम्णा में जब प्राण-प्रवाह होता है तब षट्चक्रों का ज्ञान होता है। **षट्चक्र सूक्ष्म शरीर से सम्बद्ध हैं। 'आधारपद्म'** अन्धकारमय होने से, **'स्वाधिष्ठान'** अन्धकार एवं प्रकाशमय होने से, **'मणिपूर'** अनाहत पर्यन्त तम-प्रकाश मिश्र होने से, **विशुद्ध** के चन्द्रलोक एवं **आज्ञा** के 'सुधालोक' होने पर भी सूर्यकिरण के सम्पर्क होने से ज्योत्स्ना का अभाव होने के परिणामस्वरूप ये सभी चक्र ध्यानोपयुक्त नहीं हैं। समाधिनिष्ठ योगिजन बिन्दु, चन्द्र, निरोधिका, नाद एवं नादान्त **तुरीयावस्था** में ही ध्यान करते हैं शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना **तुरीयातीतावस्थाएं** हैं। इनके ऊपर स्थित **सहस्रार** का बिन्दुस्थान पूर्ण ज्योत्स्नामय होने के कारण **समयाचारियों के लिये** ध्येय है।

सहस्रदल-कमल की पूजा—

सहस्रदल-कमल की पूजा का लक्ष्य है बिन्दुचित्कला के साथ शिवशक्ति का सामरस्य-रूप अनुसन्धान। यह अनुसन्धान चतुर्विधात्मक है—

(१) आधारादिक षट्चक्रों का त्रिकोण के साथ तादात्म्य।

(२) बिन्दुस्थान चतुरस्र का सहस्रदल के साथ तादात्म्य।

=बिन्दु-शिव का तादात्म्य।

(३) शक्ति एवं शिव का तादात्म्य।

(४) मन्त्र एवं चक्र के साथ तादात्म्य।

यही समाराधन **"महारहस्य"** कहा जाता है।

समयमत में सादाख्य-तत्व-स्वरूप **'समय'** की **"सहस्रदल-कमल"** में **पूजा** होती है।

समयाचारी योगी सादाख्या-तत्त्व के चिन्तन में रत रहते हैं। **उनसे** भिन्न आराधक **चतुर्विध ऐक्य** एवं **षड्विध ऐक्य** का अनुसन्धान करते हैं किन्तु वे भी बाह्यपूजा नहीं करते। समयाचारी, मन्त्रपुरश्चरण, जप, बाह्य होम एवं बाह्यपीठादि में बाह्यपूजादि नहीं करते। उनकी समस्त क्रियाएँ हृदयकमल में अनुष्ठित होती हैं।

समयमत का साधन क्रम—

समयमत में त्रिपुरा का समाराधन सहस्रदल-कमलस्थ बिन्दुस्थान में होता है। "पूर्ण चन्द्रमण्डल" या "सुधासिन्धु" में श्रीचक्र का न्यास करके चिन्मयी कला, आनन्दरूप आत्मा, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की पूजा की जाती है। उसकी षोडश कलाएँ हैं। उसकी तिथिरूपा १५ कलाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं, किन्तु षोडशी कला सच्चिदानन्दरूपिणी है। मातृका के १६ स्वरों के साथ प्रत्येक कला का योग करके उनका ध्यान एवं पूजन किया जाता है। शुक्लपक्ष का क्रम निम्नानुसार है—

तिथि	शक्ति	तिथि	शक्ति	तिथि	शक्ति
प्रतिपदा	त्रिपुरसुन्दरी	षष्ठी	वह्निवासिनी	एकादशी	नीलपताका
द्वितीया	कामेश्वरी	सप्तमी	वज्रेश्वरी	द्वादशी	विजया
तृतीया	भगमालिनी	अष्टमी	रौद्री	त्रयोदशी	सर्वमङ्गला
चतुर्थी	नित्यक्लिन्ना	नवमी	त्वरिता	चतुर्दशी	ज्वालामालिनी
पञ्चमी	भेरुण्डा	दशमी	कुलसुन्दरी	पञ्चदशी	मालिनी

कृष्ण पक्ष में प्रतिलोम से पूजन सम्पन्न होता है।

षोडश स्वर 'अः' के साथ **नित्याषोडशी कलारूप मूल विद्या का सभी तिथियों में पूजन किया** जाता है। **कौलमत में प्रतिदिन एक ही नित्या की पूजा** की जाती है। **समयमत** में सभी का पूजन प्रतिदिन किया जाता है। नित्याओं का स्थान विशुद्ध-चक्र है। षट्चक्रों में वर्णों की स्थिति निम्नाङ्कित है—

सं०	चक्र	वर्ण
१.	स० के बिन्दु स्थान में	१६ वां 'अः' स्वर
२.	विशुद्ध में	१६ स्वर
३.	अनाहत	क से ठ तक (१२ सूर्यों के रूप में)
४.	मणिपूर	डकार से आरम्भ करके फकार पर्यन्त आग्नेय वर्ण
५.	स्वाधिष्ठान	बकार से लकार तक 'मिस्र'
६.	मूलाधार	'अन्धतामिस्र': व श ष स

मातृका	ग्रन्थि	पञ्चदशी मन्त्र	कला
सूर्य	रुद्र	हादिकूट	११६
चन्द्र	विष्णु	सादिकूट	१३६
अग्नि	ब्रह्म	कादिकूट	१०८
३	३	३	३६०
			संवत्सर रूप

कलाएँ स्वसम्बद्ध षट्चक्रों को आवृत्त किए हुए हैं। श्रीचक्र का षट्चक्रों के साथ भी समन्वय है। सहस्रदल कमल, प्रकाशमयी नित्याकला से युक्त चन्द्रबिम्ब ही चक्र है। **सदाशिव के साथ सादाख्य कला का ध्यान** करणीय है। वही 'बिन्दु' है।

(१) षट्चक्र का षट्चक्रों के साथ तादात्म्य है।

(२) मन्त्र का श्रीचक्र के साथ तादात्म्य है।

(क) ३ ह्रीं + षोडशी का श्री बीज = शिवचक्र चतुष्टय त्रिकोण में बिन्दु **अक्षमाला**—(अ—क्ष पर्यन्त) रूप में अन्तर्भुक्त हैं।

(ख) य + र + ल + व + श + ष + स + ह = (८)—अष्टकोण रूप हैं।

(ग) क--च--त--ट वर्ग (२०) = दशारद्वय में।

(घ) ५ वर्ण--अनुस्वार—विसर्ग से = बिन्दु में।

(ङ) १४ स्वर = चतुर्दशार में।

(च) प्रथमकूट के वकार + सादिकूट के अन्तिम लकार = कलारूप सभी मातृकाएं।

(छ) मन्त्र-चक्र की एकता का ध्यान-अविद्यानिवृत्ति शुक्ल धर्म की वृद्धि।

खण्ड	खण्ड	खण्ड	प्रथम खण्ड के ऊपर	द्वि० खं० के ऊपर	तृ० खं० के ऊपर
प्रथम	द्वितीय	तृतीय			
मूलधार +	मणिपूर +	विशुद्धाख्य +	अग्निस्थान	सूर्य स्थान	चन्द्रस्थान
स्वाधिष्ठान	अनाहत	आज्ञाचक्र	(रुद्रग्रन्थि)	(विष्णुग्रन्थि)	(ब्रह्मग्रन्थि)

(३) पञ्चदश नित्या, पञ्चदशाक्षरी विद्या तथा पञ्चदशतिथियों में भी तादात्म्य है।

तिथियों के खण्ड	तिथियों के नाम (वैदिक)
१. आग्नेयखण्ड	दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना।
२. सौरखण्ड	आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया सूनृता इरा।
३. चान्द्रखण्ड	आपूर्यमाणा आपूर्यमाणा पूरयन्ती; पूर्णा, पौर्णमासी॥

कला एवं चक्रों का समन्वय—

बैन्दव + त्रिकोण	अष्टकोण	दशारद्वय + चतुर्दशार	अष्टदल	षोडशदल	चतुष्कोण
चिद्रूप	शान्त्यतीता	शान्ति	विद्या	प्रतिष्ठा	निवृत्ति

श्री चक्र का भावन—(१) सकल, (२) सकल-निष्कल, (३) निष्कल (यो० हृ०)। इस सन्दर्भ में भी समयाचार एवं कौलों में मतभेद है।

कुण्डलिनीयोग—समस्त सृष्टि की सर्जनकर्त्री महाशक्ति सर्जनोपरान्त प्राणी के मूलाधार चक्र में भुजंगाकारा होकर सो जाती है। इस निद्रायमाण शक्ति का नाम ही कुण्डलिनी है, जो अनादिकाल से सो रही है।

"भुजङ्गाकाररूपेण मूलकन्दं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा॥" (वा० त०) (१)

शाक्त परम्परानुसार साधक को साधना-क्रम में त्रैलोक्यमोहनादि चक्र के आधार में स्थित वह्निमण्डल में स्थित वाग्भव बीज के शिखरवर्ती कामकलान्तर्गत हार्धकला-रूप **"वह्नि-कुण्डली"** के उत्थान से उदित हृद्गत कामराजबीजपर्यन्त व्यापक नादमयता का भावन करना चाहिए तथा वाग्भवबीज का जप भी करना चाहिए। सर्वसौभाग्यदायक आदि चक्र का हृदयस्थसूर्यमण्डल में स्थित कामराजशिखरवर्ती कामकलान्तर्गत हार्धकला-रूप **"सूर्यकुण्डलिनी"** के उत्थान से उदित बिन्दुस्थान शक्तिबीजपर्यन्त व्यापक नादमयता का भावन एवं कामराजबीज का जप करना चाहिए। सर्वरोगहरादि चक्रत्रय के बिन्दुस्थान के इन्दुमण्डल के अन्तर्गत शक्तिबीज शिखरवर्ती कामकलान्तर्गत हार्धकलारूप **सोमकुण्डलिनी** के उत्थान से उदित ब्रह्मरंध्र के ऊपर स्थित शिवतत्त्वातीत समनापर्यन्त व्यापक नाम के साथ उन्मनी लय-भावन एवं शक्तिबीज का जप करणीय है। प्रथम कूट में जो हृल्लेखा है तथा उसके अन्तर्गत जो कामकला है उसमें वर्तमान सपरार्ध कला ही **'वह्निकुण्डलिनी'** है। वही कुण्डलिनी शक्ति द्वितीय कूट में **'सूर्यकुण्डलिनी'** एवं तृतीय कूट में **'सोमकुण्डलिनी'** की आख्या पाती है।

कुलकुण्डलिनी—मूलकन्द को कणाग्र से कमलकन्दवत् देखकर एवं अपने मुख से पूंछ को दबाकर ३॥ वलयों में वलयित होकर तथा ब्रह्मरन्ध्र-पथ को आवृत करके मूलाधार-केन्द्र में जो शक्ति सो रही है, उसी महामाया, अजा, सृष्टिस्वरूपा, बिसतन्तुनिभा, विद्युल्लता महाशक्ति का नाम कुण्डलिनी है:

"मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता॥" (वा० तं०)।

परम व्योम में चित्रकलायुक्त चन्द्रमण्डल के अधोमुखी सहस्रार की कर्णिका में स्थित अकुलकुण्डलिनी के साथ कुलकुण्डलिनी कीं एकता ही कुण्डलिनी-योग का लक्ष्य है।

योगी का लक्ष्य, उक्त शक्ति का यौगिक-क्रियाओं द्वारा प्रबोधन करके, उनका

सहस्रारस्थ सदाशिव के साथ सामरस्य कराना है।

प्रबोधन-क्रम—साधक को पद्मासनस्थ होकर गुदेन्द्रिय का आकुञ्चन करते हुए वायु को ऊर्ध्वगामी बनाना चाहिए। वायु के आघात से स्वाधिष्ठानस्थ अग्नि प्रज्वलित हो उठती है और अग्नि के प्रज्वलन से कुण्डलिनी जाग्रत् हो जाती है। परिणामस्वरूप ग्रन्थित्रय एवं षट्चक्रों का भेदन होता है। अन्ततः वह शक्ति मूलाधार से चलकर सहस्रार में शिव के साथ सामरस्य-लाभ करती है। यही कुण्डलिनी की 'परावस्था' है।

> **"रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्ति यः।**
> **ब्रह्मग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्॥**
> **सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।**
> **सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारणम्॥"[1]**

कुण्डलिनी यात्रा के दो क्रम—कुण्डलिनी-यात्रा के दो क्रम हैं: (१) आरोहक्रम, और (२) अवरोहक्रम।

आरोहक्रम—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध चक्रों एवं तद्गत तन्मात्राओं पर विजय करने के बाद आज्ञाचक्र में इन्द्रियों के साथ मन का वेधन करके शक्ति सहस्रार में शिव के साथ तादात्म्य प्राप्त करती है। शक्ति की यात्रा का यह क्रम **'आरोह-क्रम'** कहलाता है।

अवरोहक्रम—सहस्रार में शिव के साथ सामरस्य प्राप्त करने के उपरान्त आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान के क्रम से शक्ति का मूलाधार में आकर पुनः सो जाना **'अवरोहक्रम'** कहलाता है।

समयमत में (समयक्रम में) मूलाधारस्था कुण्डलिनी का साधन न करके सहस्रारस्था कुण्डलिनी ('अकुलकुण्डलिनी')[2] का साधन किया जाता है। **समयी सहस्रार चक्र को ही मूलाधार मानते हैं। समयाचार सृष्टिक्रम का साधन है।** अतः इस मत में आराधनारम्भ सहस्रार में ही होता है क्योंकि स्वाधिष्ठान के नीचे स्थित मूलाधार अन्धतामिस्र-लोक होने से हेय है।

वस्तुतः 'समयाचार' का प्रवर्तन अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इस आचार की परम्परा का सभी दक्षिणाचार-दीक्षित पालन करते हैं और उपासना-पद्धति में इस आचार का बोध श्रीयन्त्र की अर्चनाविधि से स्पष्ट होता है। इस दृष्टि से श्रीयन्त्र के स्थूल-स्वरूप का बोध होना भी अत्यावश्यक है। सृष्टि के समष्टि रूप का यन्त्रात्मक शरीर ही श्रीयन्त्र-श्रीचक्रराज है। यही शिव-शक्ति की यन्त्रमयी मूर्ति है। शिव के चार तथा

---

१. वामकेश्वरतन्त्र।

२. "अकुलकुण्डलिन्या सङ्गम्य"।

शक्ति के पांच त्रिकोणों के मिलन से निष्पन्न ४३ कोण तथा अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय एवं भूपुर के साथ 'श्रीयन्त्र' का निर्माण होता है। शैव एवं शाक्तचक्रों के अविना भाव-सम्बन्ध का ज्ञाता चक्रविद् होता है। इस यन्त्र में स्थित—१-श्रीचक्र तथा उसके नवावरण २-चक्रनाम और शक्तियां, ३-श्रीचक्र के अर्धचक्रद्वय, ४-समयमत और कौलमत में चक्रों की उन्मुखता का क्रम, ५-श्रीचक्र का प्रस्तारत्रय, ६-श्रीचक्र के पूजन का क्रम तथा ७-श्रीचक्र एवं षट्-चक्र का समन्वय, कोष्ठकों के माध्यम से वहीं इस प्रकार प्राप्त होता है—

श्रीचक्र तथा उसके नवावरण

१. बिन्दु त्रिकोण
२. अष्टकोण
३. अन्तर्दशार
४. बहिर्दशार
५. चतुर्दल पद्म
६. अष्टदल
७. षोडश दल
८. वृत्त त्रय
९. चतुर्द्वारयुक्त-भूपुर

सं०	चक्र नाम	शक्तियाँ
१.	त्रैलोक्यमोहन	नाद
२.	सर्वाशापरिपूरक	बिन्दु
३.	सर्वसंक्षोभण	कला
४.	सर्वसौभाग्यदायक	ज्येष्ठा
५.	सर्वार्थसाधक	रौद्री
६.	सर्वरक्षाकर	वामा
७.	सर्वरोगहर	विषघ्नी
८.	सर्वसिद्धिकर	दूतरी
९.	सर्वानन्दमय	सर्वानन्द

श्रीचक्र के अर्द्धचक्रद्वय

(क) शिव चक्र—
१. बिन्दु
२. अष्टदल
३. षोडशदल
४. चतुरस्र

(ख) शक्ति चक्र—
१. त्रिकोण
२. अष्टकोण
३. दशार
४. द्वितीय दशार
५. चतुर्दशार

समयमत एवं कौल मत में

चक्रों की उन्मुखता का क्रम

(१) समयमत
शक्ति के पाँचों त्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते हैं तथा शिव के चार त्रिकोण अधोमुख बनाये जाते हैं।

(२) कौलमत—शक्ति के ५ त्रिकोण अधोमुख एवं शिव के ४ त्रिकोण ऊर्ध्व-मुख माने जाते हैं।

श्रीचक्र का प्रस्तारत्रय

(१) मेरु प्रस्तार
= महात्रिपुरसुन्दरी का १६ नित्याओं के साथ तादात्म्य

(२) कैलास प्रस्तार
= मातृका वर्णों के साथ तादात्म्य

(३) भू-प्रस्तारवशिन्यादि के साथ तादात्म्य

श्री चक्र के पूजन का क्रम

(१) समय-पूजन
सृष्टि-क्रम का पूजन

(२) कौल-पूजन
संहार-क्रम का पूजन।
प्रथम बिन्दु से बाह्य की ओर तथा द्वितीय बाह्य से बिन्दु की ओर[१]।

(३) अन्य दृष्टि से—
सृष्टि, स्थिति, संहार, भासा और अनाख्या क्रम।[१]

श्रीचक्र एवं षट्चक्र का समन्वय[२]

१. त्रिकोण-आधार में
२. अष्टकोण-स्वाधिष्ठान में
३. दशार—मणिपूर में
४. द्वितीय दशार —अनाहत में
५. चतुर्दशार—विशुद्धाख्य में
६. शिवचक्र चतुष्टय —आज्ञा चक्र में
चतुरस्र बिन्दुस्थान — सहस्र-दल कमल[३]

---

१. इन पूजा प्रकारों का क्रम-विवेचन हमने **"श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी-खड्गमाला"** ग्रन्थ के **"श्रीयन्त्र-दीपिका"** शीर्षक प्राक्कथन में दिया है। द्रष्टव्य—पृ० ११-१४। (विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित)

२. यह विषय हमने **'श्रीमदापदुद्धारकबटुक भैरव-स्तोत्रम्'** ग्रन्थ में विस्तारसे समझाया है। यह ग्रन्थ 'निगमागम-अनुसन्धान-केन्द्र-'दिल्ली'से मुद्रित हुआ था, किन्तु अब अप्राप्य है।

३. **सहस्रदल कमल** को आज्ञा-चक्र से मस्तक के शिखराग्रभाग तक मानकर इसमें दस बिन्दु आदि चक्रों की धारणा का विषय भी ज्ञातव्य है।

इस प्रकार समयि-मत में 'समय' का अर्थ सादाख्य-तत्त्व ही है और उनकी सपर्या सहस्रदल-कमल में ही होती है, बाह्यपीठादि में नहीं। किन्तु शाम्भव-दीक्षा द्वारा अधिकार-प्राप्त समयाचारी उपासकों को अधिकारानुमार बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही पूजाएं पुरश्चरणाङ्ग के रूप में करनी चाहिये ऐसा आगमों का आदेश है। वैसे यह निश्चित है कि—आरम्भ में स्थूलोपासना में प्रवृत्त होने पर ही क्रमशः सूक्ष्म और सूक्ष्मतर उपासना तक पहुंचा जा सकता है। जो ज्ञानी हैं उनका भी कर्म-परिहार नहीं है, जब विदेहभाव उत्पन्न हो जाता है तो स्वभावतः कर्म-परिहार हो जाता है किन्तु वह बुद्धिपूर्वक नहीं किया जाता। भगवान् परशिव ने 'नित्याषोडशिकार्णव' में स्वयं कहा है कि—

'मयाऽप्येतद् व्रतस्थेन क्रियतेऽद्यापि सुव्रते।'[1] इसके अनुसार नित्यमुक्त भी बाह्यपूजा करते हैं फिर दीक्षित के लिये तो कहना ही क्या? 'सुभगोदय-स्तुति'कार ने अनेक स्थानों पर समय-मत की विस्तार से चर्चा की है अतः यहां कुछ विस्तार से चर्चा की गई है।[2] इस आचार के सम्बन्ध में निम्नलिखित अप्रकाशित ग्रन्थ भी द्रष्टव्य हैं—

१-समयाचार-तन्त्र

लि०—(१) ३०० या कुछ अधिक श्लोकों का यह ग्रन्थ है। यह रा० ला० ७५५ में वर्णित है, किन्तु उसमें यह गद्यमय कहा गया है। वास्तव में इसका मन्त्रभाग तथा विधान अंश ही गद्य में हैं, शेष सारा ग्रन्थ पद्यमय है। —ए० बं० ५६२०

(२) ६०० या अधिक श्लोकों का यह ग्रन्थ है। इसमें —'शिवशक्त्यात्मक समयाख्य परात्पर परब्रह्म, जो सब शास्त्रों में गुप्त है जिनसे अतिरिक्त कुछ नहीं, उनके सम्बन्ध में कहने की कृपा करें' यों देवी की प्रार्थना पर शिवजी द्वारा नित्यानन्द ज्ञान, रहस्ययोग, परमा विद्या के बीज, विद्यासाधन के प्रकार, पूजारहस्य आदि का कथन, मुद्राकथन, कुण्ड-साधन, होम आदि बीजादि के साधन का प्रकार तथा भावनिर्णय आदि वर्णित हैं। यह १० या अधिक पटलों में पूर्ण है।

—नो० सं० २/२४१

(३) (क) श्लोक सं० ३००। (ख) श्लोक सं० ३००।

—अ० ब० (क०) २०६, (ख) ५५४०

(४) उमा-महेश्वरसंवादरूप। श्लोक सं० ३००। विषय—'समयाचार' शब्द का अर्थ, वाग्वादिनीमन्त्र, विजयास्तोत्र, तन्त्रोक्त कर्म समय पर करणीय हैं यह कथन। खीर, दही मट्ठा आदि १४ पदार्थ, उनका शोधनप्रकार, प्रातःकाल, मध्याह्न आदि पाँच जपकाल,

---

१. 'योगिनीहृदय' के तृतीय पटल, पद्य सं. ३ में "द्वितीया चक्रपूजा च सदा **निष्पाद्यते मया**" भी कहा गया है।

२. समयाचार के सम्बन्ध में पूज्य पीताम्बरापीठ के संस्थापक राष्ट्रगुरु स्वामीजी ने भी विचार प्रस्तुत किये हैं। द्रष्टव्य—**"लेख-संग्रह"** ग्रन्थ।

शान्तिक, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण आदि षट्कर्मों के अनुरूप मुद्रादि, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तरादि आम्नायकथन, पूर्व आदि तत्तत् आम्नायों के देवता आदि कथन, उक्त आम्नायों की भिन्न-भिन्न मालाएँ, शान्तिक आदि कर्मों में आसन भेद, जपस्थान, मन्त्रों के पंल्लिङ्ग, नपुंसक आदि कथन, वामाचार, दक्षिणाचार आदि, तन्त्र-यामल आदि की संख्या पञ्च मकारादि का कथन और शक्ति साधनादि वर्णित हैं।

—रा० ला० ७५५

(५) (क) मेदयामलान्तर्गत, श्लोक सं० लगभग ३८५, पूर्ण। लिपिकाल सं०१८१२ वि०। (ख) श्लोक सं० लगभग ३६०, पूर्ण। (ग) श्लोक सं० ७५, अपूर्ण। (घ) श्लोक सं० ३४४, पूर्ण। (ङ) श्लोक सं० लगभग २८० पूर्ण।

—सं० वि० (क) २३६८४, (ख) २४१०३, (ग) २४२०६, (घ) २४७६३, (ङ) २४८००

पुरश्चर्यार्णव, मन्त्रमहार्णव, कुलप्रदीप, प्राणतोषिणी, ताराभक्तिसुधार्णव, कौलिकार्चनदीपिका तथा सर्वोल्लासतन्त्र में इस ग्रन्थ के अनेक उदाहरण लिये गये हैं।

२-समयाचारनिर्णय

लि०—महाराज्यादिनिर्णय के साथ संलग्न। सम्मिलित श्लोक सं० ३४८, पूर्ण।

—सं० वि० २४५०५

३-समयाचारपद्धति

लि०—श्लोक सं० ५८८, अपूर्ण। —सं० वि० २६६३८

४-समयाचारसङ्केत

लि० श्लोक सं० लगभग २८८, पूर्ण। —सं० वि० २४७६६

५-समयातन्त्र

लि०—(१) देवी-ईश्वर संवाद रूप। इसमें १० पटल हैं। श्लोक सं० १२००। १म पटल में गुरुक्रमवर्णन, २य में ताराप्रकरण, ३. दक्षिणकालिकाप्रकरण, ४. नित्यपूजा-प्रकरण ५. शवसाधन-प्रकरण, ६. उच्छिष्ट-चाण्डालिनीसिद्धि-साधनप्रकरण, ७. प्रचण्ड-सिद्धिविधिप्रकरण, ८. षट्कर्मविवरण। —ए० बं० ५६२४

(२) श्लोक सं० ५००। १ से ५ पटल हैं। —अ० बं० ३५०७

(३) (क) श्लोक सं० ३१२, अपूर्ण। लिपिकाल १७६१ वि०। (ख) श्लोक सं० २३२, अपूर्ण। (ग) श्लोक सं० १२० प्रथम पटल मात्र, पूर्ण।

—सं० वि० (क) २५८७६, (ख) २५६५१, (ग) २६४४२

—पुरश्चर्यार्णव, ताराभक्तिसुधार्णव, कौलिकार्चनदीपिका तथा कालिकासपर्याविधि में इस ग्रन्थ के सन्दर्भ आते हैं।

६-समयापूजन

लि०—श्लोक सं० १५० । —अ० ब० १२०६३

७-समयाषट्कनिरूपण

लि०—देवीपूजाविधि के साथ संलग्न । सम्मिलित श्लोक सं० लगभग ६२५, पूर्ण । —सं० वि० २६२५५

मिश्रक आचार—

यह आचार 'कुलमार्ग' और 'समयमार्ग' दोनों का मिश्रित रूप होगा ऐसा '**मिश्रक**' शब्द से ही ज्ञात होता है। तथाऽपि मिश्रकमतानुयायी के लिये 'चन्द्रकला-विद्याष्टक' में संगृहीत अथवा स्वीकृत ग्रन्थों में—**१-चन्द्रकला, २-ज्योत्स्नावती, ३-कलानिधि, ४-कुलार्णवा, ५-कुलेश्वरी, ६-भुवनेश्वरी, ७-बार्हस्पत्य** और **८-दूर्वासमत**" ये ग्रन्थ मार्ग केन्द्रित हैं । ये ग्रन्थ '**महामाया-शम्बर**' आदि चौसठ तन्त्रों के अन्तर्गत श्रीविद्या-प्रतिपादक माने जाते हैं और इन ग्रन्थों द्वारा दर्शित मार्ग का मिश्रकाचारी अनुसरण करते हैं।

सुभगोदय-स्तुति और सौन्दर्य-लहरी

यह कहा जाता है कि—श्रीगौडपादाचार्य की परम्परा में दीक्षित श्री शङ्कराचार्य ने उनके द्वारा प्रदर्शित-प्रतिपादित मत का अनुसरण किया है। तदनुसार '**सुभगोदय-स्तुति**' और '**सौन्दर्य-लहरी**' पर भी कुछ विचार अपेक्षित है । इस दृष्टि से परिशीलन करने पर एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि "श्रीगौडपादाचार्य ने अपनी स्तुति में संक्षेप से सूत्र-रूप में जिन विषयों का सङ्केत किया है, उनका 'सौन्दर्य-लहरी' में विशदीकरण हुआ है।" उदाहरणार्थ हम-(परमपूज्य श्री १०८ योगिराजमहाराज बाबा श्रीमोतीलालजी मेहता द्वारा की गई 'सौन्दर्य-लहरी की व्याख्या' के परिप्रेक्ष्य में कुछ परिशीलन प्रस्तुत करते हैं।

(१) प्रस्तुत स्तुति के प्रथम पद्य में '**भवानि**' और '**भव-महिषि**' इन दो समानार्थी पदों से सम्बोधित करते हुए आचार्य ने '**सुधासिन्धोरन्तर्वसतिम्**' कहा है और ७ वें पद्य में पुनः 'सुधासिन्धु' का स्मरण दिलाते हुए सुरमणिगृह का स्मरण किया है जिसे श्रीशङ्कर भगवत्पाद ने सौन्दर्य-लहरी में—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटी-परिवृते,
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परम-शिवपर्यङ्कनिलयां,
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥८॥

पद्य से सरल बना दिया है । भावों का साम्य यथावत् सुरक्षित है और इसमें दर्शित '**सुधासिन्धु**' के साथ 'मणिद्वीप' की छटा श्रीबाबा ने इस प्रकार स्पष्ट की है—

"मणिद्वीप के चारों ओर अमृत का समुद्र है । वह समुद्र वायुसङ्घटन-योग से बहुत

दिव्य तरङ्गवाला है। रत्नमयी दिव्य प्रकाशयुक्त रेती उस समुद्र के किनारे फैली हुई है। मणिद्वीप में चार द्वार हैं। वह स्थान अनेक सिद्ध पुरुषों के निवासस्थानों से आवृत है। सहस्रों दर्शनातुरों की भीड़ वहां लगी रहती है। वहां के वृक्ष दिव्य मणियों के दिव्य वृक्ष से दीखते हैं। वहां बड़ी सुन्दर वाटिका है। वसन्त इस वाटिका का माली है। सब वृक्ष निरन्तर नव फूल-फल-पल्लव से युक्त रहते हैं। वाटिका आनन्दमय दिव्य-सुगन्ध से भरी हुई है। पद्ममणि (पन्ना) के समान हरितभूमि में अनेक सुन्दर रसमय अमृतवारि के झरने प्रस्फुरित होकर मधुर कलरव करते हुए धीरे-धीरे बहते हैं। ऐसे बहुत से झरने श्रीमणिद्वीप की प्राकृतिक शोभा को बढ़ाते हुए द्रष्टाओं में महाशान्ति उत्पन्न करते हैं। इन झरनों के जलपान से ब्रह्मानन्द पीयूष गुण-सहित जागता है। शुक, मैना आदि पक्षी तत्त्वविज्ञान-चर्चामय मधुर स्वर से मीठी वाणी बोलते हैं। यह उत्तम वन सुगन्धमय नीरोगकर पवन से भरपूर हितानन्दकर है। विश्वसार इस मणिद्वीप के मध्य में कल्पवृक्ष का आराम है। कल्पवृक्ष की डालियां सुवर्णमय कान्तिवाली हैं। यह महादिव्य द्वीप दशावरण वाले श्रीचक्र के आकार का है। यथा—

अमृतसागर = भूपुर—आधार चक्र में ध्यान,

लोहदुर्ग = वृत्तत्रय - स्वाधिष्ठान ,,

कांस्यदुर्ग = षोडशदलपद्म = मणिपूर ,,

ताम्रदुर्ग = अष्टदल पद्म—अनाहत ,,

सीसक दुर्ग = चतुर्दशार—विशुद्ध ,,

रौप्य दुर्ग = बहिर्दशार—आज्ञाचक्र के अधोभाग में ध्यान

स्वर्ण दुर्ग = अन्तर्दशार ,, ,,

सुरविटपवाटी (कल्पवृक्षवन) = अष्टार—आज्ञाचक्र के ऊर्ध्वभाग में ध्यान

चिन्तामणिगृह = त्रिकोण—सहस्रार के बहिर्भाग ,,

श्रीमहामाया महाशक्ति स्थान = बिन्दु-सहस्रार के अन्तर्भाग में ,,

श्रीकल्पवृक्ष वन की सुवर्णमय डालियों में रङ्ग-बिरङ्गे रत्नसमान दिव्य पत्र-पुष्प-फलादि लगे हैं। कल्पवृक्ष की इस महासुगन्धित रम्यवाटिका के मध्य में चिन्तामणि की ईंटों से निर्मित महादिव्य महल कोटि-बालादित्यवत् प्रकाशमान है। उसके मध्य में शिवाकार-मञ्चस्थ परमशिव-पर्यङ्कासन पर विश्वसुन्दरी पराशक्ति विराजमान है।

यहां 'परमशिव-पर्यङ्कनिलया' और सुभगोदय स्तुति के—

भवानि ! त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुखवपुः—
पराकारां देवीममृत-लहरीमैन्दवकलाम् ।

महाकालातीतां कलितसरणी-कल्पिततनुं,
सुधासिन्धोर्मध्येवसतिमनिशं वासरमयीम्[१] ॥१॥

पद्य में एक ही प्रकार का शिव-शक्ति की एकात्मता का भाव है, क्योंकि शिव ब्रिन्दु है और शक्ति नाद है। इसी एक्य के रहस्य को परमगुरु से प्राप्त कर **'भजन्ति त्वां धन्याः'** कहकर आचार्य शङ्कर ने गुरु, परमगुरु और परमेष्ठि आदि गुरुओं के प्रति अपनी भक्ति व्यक्त की है और स्वयं को भी धन्य माना है।"

इसके पश्चात् **'मनस्तत्त्वं;** (२), **मनोमार्गं** (३), **यदा तौ चन्द्रार्कौ;** (४), **पृथिव्यापस्तेजः०** (५), और **कुमारी यन्मन्द्रं०** आदि सुभगोदय-स्तुति के पद्यों में जिस कुण्डलिनी के प्रबोध का विवरण प्रस्तुत हुआ है, वह 'सौन्दर्यलहरी' में ९/और १०/संख्यक **'महीं मूलाधारे'** तथा **'सुधाधारासारैः'** इत्यादि पद्यों से व्यक्त हुआ है। यहां दिखाये गये षट्चक्रवेधभाव में सूक्ष्मतत्त्वों के वेधद्वारा स्थूल पञ्चतत्त्वों में पञ्चीकरण की प्रक्रिया कही गई है। यथा—

"मूलाधार में भूतत्त्व पीतवर्ण, स्वाधिष्ठान में जलतत्त्व श्वेतवर्ण (यहां आचार्य शङ्कर ने स्वाधिष्ठान में अग्नितत्त्व माना है), मणिपूर में अग्नितत्त्व रक्तवर्ण (मणिरत्नवर्ण), अनाहत-हृच्चक्र में अग्निवायु-मिश्रिततत्त्व गुलाबी वर्ण, विशुद्ध (कण्ठचक्र) में वायुतत्त्व धूम वर्ण तथा आज्ञाचक्र में आकाशतत्त्व इन्द्रधनुषवर्ण।

इस प्रकार कुलपथ का भेद करके पराशक्तिरूपा गुप्त रहस्यमयी भगवती सहस्रार-पद्म में अपने पति के साथ (चिदानन्द लक्ष्य में) गुप्त विहार करती है। यहां सहस्रदल से (मूलाधारस्थ-चतुर्दले भूपुरमये शक्तिरूपायाः कुण्डलिन्याः स्थानवत्) श्रीचक्र का भाव है।

तत्त्वबीज इस प्रकार हैं—हं आकाशबीज, यं वायुबीज, रं अग्निबीज, वं वरुणबीज, लं भूबीज, मं मनोबीज, यं बुद्धिबीज, सं शक्तिबीज, हं चिद्बीज-शिवबीज-प्राणबीज, शं स्वराश्च-जीव बीजादि……।

कुलपथ भेद से पृथ्वी से मनपर्यन्त २१ तत्त्वों का भेदन हो जाता है। २१ तत्त्व-१-पृथ्वी, २-अप्, ३-अग्नि, ४-वायु, ५-आकाश, ६-गन्ध, ७-रस, ८-रूप, ९-स्पर्श, १०-शब्द, ११-नासिका, १२-जिह्वा, १३-चक्षु, १४-त्वक्, १५-श्रोत्र, १६-वाक्, १७-पाणि, १८-पाद, १९-पायु, २०-उपस्थ, २१-मन।

मन से परे निम्नलिखित तत्त्व हैं—२२ बुद्धि, २३ अहङ्कार, २४ प्रकृति, २५ पुरुष, (चित्त), २६ कला, २७ अविद्या, २८ विद्या, २९ राग, ३० नियति, ३१ माया, ३२ शिव, ३३ शक्ति।

कोई कोई १५ तत्त्व पृथक् बताते हैं। यथा—

सप्तधातु—१ त्वक्, २ असृक, ३ मांस, ४ मेदं, ५ अस्थि, ६ मज्जा और ७ शुक्र।

पञ्चप्राण—१ प्राण, २ अपान, ३ ब्यान, ४ उदान और ५ समान।

---

१. वैसे श्रीशङ्कराचार्य ते 'भवानि' पद से आरम्भ होने वाली एक **'भवानिस्तुति'** की भी रचना की है, जो अत्यन्त रमणीय वर्णनपूर्ण प्रासादिक रचना है किन्तु उसमें तान्त्रिक निर्देश नहीं हैं।

गुणत्रय—१ सत्व, २ रज, और ३ तम।

तत्त्वबीजों का चक्रन्यास इस प्रकार है—

श्रीचक्राङ्ग	तत्त्व	चक्र	तत्त्वबीज
त्रिकोण	आकाश	आज्ञा	हं
अष्टकोण	वायु	विशुद्धि	यं
दशारद्वय	अग्नि+वायु	हृत्	यं रं=य्रं
चतुर्दशार	अग्नि	नाभि	रं
अष्टदलपद्म	जल	स्वाधिष्ठान	व
षोडशदलपद्म	भू	मूलाधार	लं

श्रीचक्र में कोण-परिणति

प्रस्तुत स्तुति के १०-११ और १७वें पद्यों में श्रीचक्र के रचनाविधान एवं शिवशक्त्यात्मकता का सूचन करते हैं। सौन्दर्यलहरी में भी **'चतुर्भिः श्रीकण्ठैः'** इत्यादि ११वें पद्य से श्रीचक्र के सम्बन्ध में कहा गया है। तदनुसार श्रीचक्र में नौ त्रिकोणों में चार शिवात्मक तथा पाँच शक्त्यात्मक हैं। ये सब शम्भु (बिन्दु) से पृथक् हैं। फिर अष्टदल पद्म तथा षोडशदल पद्म हैं पश्चात् त्रिवृत्त और त्रिभूपुर हैं। सब त्रिकोणों की संख्या ४३ है।

सौदर्न्यलहरी के प्रत्येक श्लोक के प्रारम्भाक्षर संग्रह से शताक्षारी-महामन्त्र के १०१ बीजाक्षरों की आराधना के साथ प्रत्येक बीजमन्त्र का एक-एक पूजन-यन्त्र भी निर्दिष्ट हैं। उन में से प्रत्येक यन्त्र श्रीमहायन्त्र का एक-एक भाग है। यथा मध्य के ४३ कोण, त्रिकोण+२४(८+१६), पद्मदल+१५, त्रिवृत्त(धनुराकार यन्त्र)+१९, त्रिभूपुर(चतुष्कोण यन्त्र) = १०१ कुल यन्त्र हैं। इनमें—

४३ त्रिकोण अपने पूज्य देवताओं के साथ श्रीयन्त्र में हैं।

२४ पद्मदल के देवताओं की पूजन-विधि भी श्रीयन्त्र में कही गई है।

१५ (१) सूक्ष्म पञ्च ज्ञानेन्द्रियां, २-सूक्ष्म पञ्च कर्मेन्द्रियां और ३-सूक्ष्म पञ्च तन्मात्राएं।

१९ (१) पञ्च प्रेतासन सतत ब्रह्माण्ड के १. ब्रह्मा, २-विष्णु, ३-रुद्र, ४-इन्द्र और श्री, ५-कालपुरुष भगवान् ईशान।

(२) दश दिक्पाल—१-महेन्द्र, २- महाग्नि, ३-महायम, ४- महानिर्ऋत, ५- महा वरुण दैवत, ६- महावायुदैवत, ७- महासोम, ८- ईशान (मदन भैरव, आनन्द-भैरव), ९- श्रीधूम्राशक्ति (ऊर्ध्व में) और १०-श्रीमहानन्तशक्ति (अधो भाग में)।

(३) १- मन, २-बुद्धि, ३- चित्त, ४-अहङ्कार।

३६० रश्मि-कलाएँ[1]

श्रीगौडपाद ने इस स्तुति में **'त्रिखण्डं ते चक्रं'** और **'शतं चाष्टौ वह्नेः'** इत्यादि आठवें तथा नौवें पद्यों से जिन ३६० रश्मियों का वर्णन किया है उन्हें आचार्यशङ्कर भी 'सौन्दर्यलहरी' में **'क्षितौ षट्पञ्चाशत्'** इत्यादि १४ वें पद्य से प्रस्फुट करते हैं। श्रीबाबाजी ने इस प्रसङ्ग को इस प्रकार समझाया है—

हे मां, हे सर्वसिद्धिमयि ! आप श्री के चरण-कमल पञ्चतत्त्वात्मक केन्द्रबिन्दु-महाकाश से परमपर हैं। केन्द्रबिन्दु ३६० कला का होता है। उसमें ५६ भ्वात्मक मयूखाएं पृथ्वी की' ५२ जलात्मक उदधि की, ६२ अग्न्यात्मक वह्नि की, ५४ अनिलात्मक वायु की, ७२ आकाशात्मक शून्य (व्योम) की और ६४ मयूखाएँ मन की हैं। पञ्चतत्त्वात्मक इस देह की सब मिलाकर २९६ कलाएं हैं और मन की ६४। इस प्रकार कुल ३६० कलाएं हुईं। इन सम्पूर्ण जीवनात्मक तथा सृष्ट्यात्मक विश्वशक्ति-कलाओं से भगवती के चरणकमल अत्यन्त परे हैं।

उत्पत्ति-स्थिति-लय—ये त्रिक्रियाएं **'सृष्टिक्रम'** कहलाती हैं। इन तीन क्रियाओं में त्रि गुण तथा त्रिदैवत हैं। रज, सत् और तम ये तीन गुण हैं तथा ब्रह्मा विष्णु और रुद्र त्रिदेव हैं।

यहां योगिराज ने और भी विशेषरूप से समझाते हुए कहा है कि—

५६ कला भ्वात्मक—६ बीज (ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः)+तथा ५० लिपि-वर्ण=५६।

६२ कला जलात्मक (उदधि)—५० लिपिवर्ण+२बीज (सौं श्रीं)=५२

५२ कला अग्न्यात्मक—५०लिपिवर्ण+१२ ॐ हंसः सोहं ॐ सोहं हंसः ॐ ह्रीं १२= ६२।

५४ कला अनिलात्मक—(वायु)—५० लिपिवर्ण+४यं रं लं वं=५४।

७२ कला व्योमात्मक—अं आं इं ईं उं ऊं ॠं ऋं एं ऐं ओं औं अं अः, अः अं औं ओं ऐं एं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ऐं ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं एं ऐं ओं औं अं अः, अः अं औं ओं ऐं एं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः= ७२

६४ कलात्मक मन—अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः अः अं औं ओं ऐं एं ऊं उं ईं इं आं अं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः, अः अं औं ओं ऐं एं ऊं उं ईं इं आं अं ह्रीं क्लीं अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः=६४।

३६०

मूलाधार चक्र	+मणिपुर—अग्निकला	=१०८
स्वाधिष्ठान ,,	+अनाहत—सूर्यकला	=११६
विशुद्ध ,,	+आज्ञा—चन्द्रकला	=१३६
	शान्तिप्रभा	=३६०

---

१. यह कलाओं का रहस्य पूर्वाचार्यों ने विभिन्न रूपों से आगमों में समझाया है। इस सम्बन्ध में हमारा शीघ्र-प्रकाश्य निबन्ध—"आगमिक अनुसन्धान के आलोक में—**कला, काल और कालातीता" द्रष्टव्य है।**

'सुभगोदय-स्तुति' में **'ऐक्य-निरूपण** तथा **मन्त्र-चक्रैक्य'** को बहुत महत्त्व दिया गया है। यहां ऐक्य चतुर्धा और षोढा बतलाया है। इस ऐक्य-साधना में रहस्यात्मक पद्धति का समावेश है जो गुरुकृपा से ही संवेद्य है। आगमों में तथा साधकों के स्वानुभव में ऐसे ऐक्य के निर्देश प्राप्त होते हैं। कहीं कुण्डलिनी-रहस्य-सोपान की **'उन्नेय-भूमिका'** अपेक्षित है तो कहीं **'प्रत्यावृत्ति-भूमिका'** के सङ्केत दिये हैं। आचार्य श्री ने यहां सहस्रार पद्म में कुण्डलिनी को पहुंचाने तथा वहां विराजमान होने की स्थिति में अवतारण की प्रक्रिया को भी दिखलाया है। मन्त्र और चक्र का ऐक्य भी इसी प्रकार की योगाभ्यास-साध्य ध्यान-मूलक साधना का रहस्य व्यक्त करता है।

अग्नि-शिव-शशिमयी त्रिदेव-माता कामकला का ध्यान, तीव्र विद्युद् रेखावत् द्रुतगतिमयी तथा अनन्ताकाशमयी माता के अनन्त शक्तिसागर में बिन्दुवत् चन्द्राग्निसूर्य की सत्ता एवं प्रकृति चक्र के षट्चक्र-पद्मों से अति परे सहस्रार पद्म में दिव्य-दर्शन के भाव भी संवलित हैं। आचार्य श्रीगौडपाद ने—

षडब्जारण्ये त्वां समयिन इमे पञ्चकसमां,
यदा संविद्रूपां विदधति च षौढैक्यकलिताम्।
मनो जित्वा चाज्ञा सरसिज इह प्रादुरभवत्,
तडिल्लेखा नित्या भगवति तवाधारसदनम् ॥ ३८ ॥

इस पद्य से जिसका निर्देश किया है उसका पल्लवन श्रीशङ्कराचार्य ने इस पद्य से किया है—

तडिल्लेखातन्वीं-तपन-शशि-वैश्वानरमयीं,
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा,
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम् ॥ २१ ॥

सुभगोदय-स्तुतिकार ने भगवती के स्वरूप वर्णन में केवल तीन पद्य ही लिखे हैं जिसमें वपुरूपा उपास्ति में चतुर्भुजा और दशभुजा कह कर उनमें धारण किये हुए आयुधों का ही सङ्केत अधिक है। यथा—

धनुर्बाणानिक्षूद्भव-कुसुमजानङ्कुशवरं,
तथा पाशं बिभ्रत्युदितरबिम्बाकृतिरुचिः ॥ १४ ॥
भवत्यैक्यं षोढा भवति भगवत्याः समयिनां,
मरुत्वत्कोदण्डद्युतिनियुतभासा समरुचिः।
भवत्पाणिव्रातो दशविध इतीदं मणिपुरे,
भवानि ! प्रत्यक्षं तव वपुरुपास्ते न हि परम् ॥ १५ ॥
भवानि ! श्रीहस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमथो,
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्रुक्शरवरौ।

अथ द्वाभ्यां मुद्रामभयवरदानैकरसिका,
क्वणद्वीणा द्वाभ्यां त्वमुरसि कराभ्यां च बिभृषे ॥ १६ ॥

जब कि सौन्दर्य-लहरी में समस्त शरीर का वर्णन और अङ्गों के सौष्ठव का कमनीय वर्णन हुआ है। इसी प्रकार विशेष विचार करने पर और भी तत्त्वों का उन्मीलन हो सकता है, जिसके लिये हम अग्रिम चिन्तन का कर्तव्य पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

श्री सुभगोदय-स्तुति के अन्य पाठान्तर

वाराणासी के सरस्वतीभवन-पुस्तकालय में उपलब्ध दो प्रतियों में कुछ पाठान्तर और भी प्राप्त होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

पद्य—(१) लहरीं बैन्दव०। सरणिं कल्पित०। (२) व्यावृत्ताक्षी। (३) नाडीगण-जुषे। निरुद्ध्यारं। (५) तन्मात्राप्ता। (१६) स्रुक्श्रुरवरम्। (२०) कश०। (२५) धनुश्चक्रं शक्तौ। (३२) श्लोक व्यत्यय है। (३४) तदाज्ञायां विद्वन् नियत०। (३९) सदा संविद्०। सदनात्। (४०) प्रचुरतरमायाभिरभवं। (४४) तवात्मा। (५२) त्रया विद्धो०। इत्यादि।

यह स्तुति पूर्ण है अथवा अपूर्ण? यह प्रश्न अभी बना हुआ ही है। हमने पूज्य **गुरुदेव श्री विद्यारण्यजी** महाराज से चर्चा की थी तब उन्होंने बतलाया था कि 'इस स्तुति के पद्य पूर्ण नहीं है तथा क्रम में भी यत्र-यत्र भ्रान्त पाठ हैं।' यह सम्भव है कि इसकी अन्य पाण्डुलिपियां प्राचीन ग्रन्थालयों में और विद्वज्जनों के व्यक्तिगत संग्रहों में हों।

हमारे यहाँ और अन्य सम्प्रदायों में ऐसी कुछ स्तुतियां हैं। जिनका नित्य पाठ तो होता है किन्तु उनके कुछ पद्य अथवा कुछ अंश गुप्त रख लिये गये अथवा वे लुप्त हो गये हैं। जैसा कि विश्वामित्र प्रणीत **'गायत्री-स्तवराज'** आदि में है। अतः पाठक इस सम्बन्ध में चिन्तन करें और यदि कुछ उपलब्ध हो तो इन पङ्क्तियों के लेखक को भी सूचित करने का कष्ट करें।

भगवती सुभगा की परमानुकम्पा से **'श्रीसुभगोदयस्तुति'** का मूलपाठ तथा उस पर यह विस्तृत परिशीलन लिखने की मुझे प्रेरणा मिली और इसका उत्तम प्रकाशन भी यथा-समय हो गया, यह परम हर्ष का विषय है। गुरुकृपा एवं **'शोध-प्रभा' के प्रधान सम्पादक प्राचार्य डॉ० मण्डन मिश्रजी** के स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन से कार्य सुलभ हुआ तथा इसकी अतिरिक्त पुस्तक भी प्रकाशित हुई; अतः उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूं और मां से प्रार्थना करता हूं कि—

त्रिपुर हरहृदम्भोजातमञ्चेऽरुणाङ्गी, सृणि-सुमशर-पाशेक्ष्वायुधान् धारयन्ती।
त्रिभुवन-विभवानां भावयित्री भयघ्नी, वितरतु हृदि भक्तिं सर्वदा सा भवानी॥

इति श्रीषोडशानन्द-पदकञ्जालि-गुञ्जितुः।
रुद्रदेवस्य कृतिनः कृतिर्भूयात् सतां मुदे॥

—डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

श्रीराजराजेश्वरी

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी

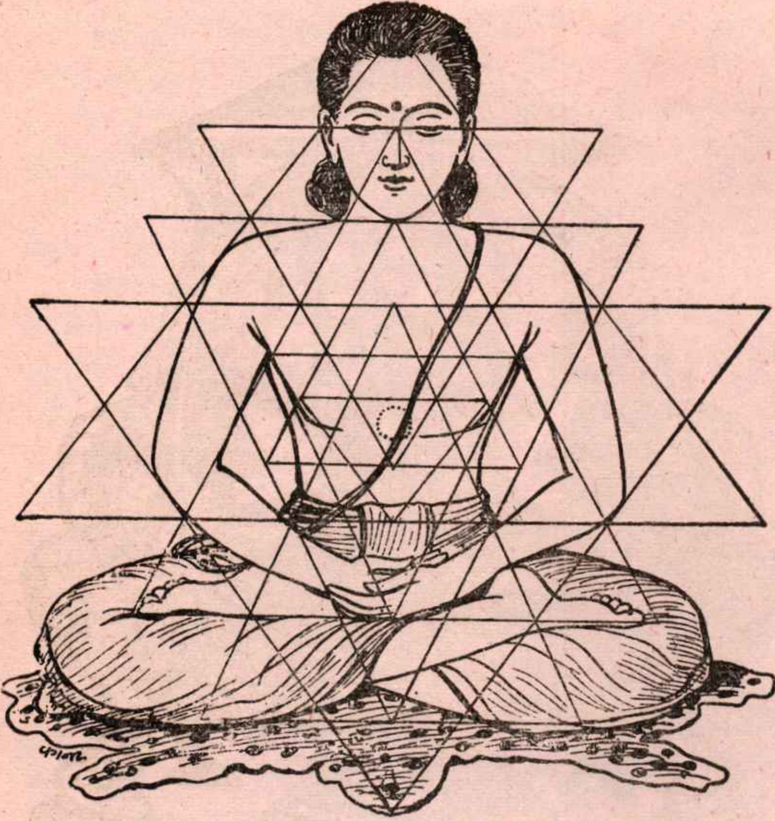


नाना-जन्मकृतैनसां चयवशात् पुण्याम्बुशुष्यज्जले,
जाड्यक्लिन्न-हृदम्बुजस्य दयया प्रोदञ्चनायाञ्जसा।
सद्यश्चिद्गगनाङ्गणे समुदयेत् सिन्दूर-भा-विग्रहा,
सौम्या सर्वसुख-प्रदान-'सुभगा' श्रीराजराजेश्वरी ॥

—रुद्रस्य

मानव-देहस्थ-चक्र-स्थल-विलसितः

श्रीयन्त्रराजः



मातस्तावकमासनं द्युतिमयं बिन्दु-त्रिकोणाञ्चितं,
तत्पश्चाद् वसुदिग्दशारमनुभिः कोणैर्युतं सुन्दरम् ।
अग्रे नागदलाङ्कितं त्रिभिरथो वृत्तैस्तथा भूपुरै-
र्युक्तं सर्वसुखावहं पुरमयं 'श्रीयन्त्रराजं' भजे ॥

—रुद्रस्य

॥ श्रीः ॥

परमहंस-परिव्राजकाचार्य-श्रीमदाद्यशङ्कराचार्याणां परमगुरुवर—

परम-पूज्य-श्रीगौडपादाचार्यवर्य-विरचिता

॥ श्रीसुभगोदय-स्तुतिः ॥



भवानि ! त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुखवपुः,
पराकारां देवीममृतलहरीमैन्दवकलाम् ।
महाकालातीतां [१]कलितसरणीकल्पिततनुं,
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम् ॥१॥

मनस्तत्त्वं जित्वा नयनमथ नासाग्रघटितं,
[२]पुनर्व्यावृत्ताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम् ।
तदानीमेवास्य स्फुरति बहिरन्तर्भगवती,
परानन्दाकारा परशिवपरा काचिदपरा ॥२॥

मनोमार्गं जित्वा मरुत इह नाडीगणजुषो,
निरुद्ध्यार्कं सेन्दुं दहनमपि सञ्ज्वाल्य शिखया ।
सुषुम्णां संयोज्य श्लथयति च षड्ग्रन्थि-शशिनं,
तवाज्ञाचक्रस्थं [३]विलयति महायोगिसमयी ॥३॥

यदा तौ चन्द्रार्कौ निजसदनसंरोधनवशा—
[४]दशक्तौ पीयूषस्रवणहरणे सा च भुजगी ।
प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा दशति शशिनं बैन्दवगतं,
सुधाधारासारैः स्नपयसि तनुं बैन्दवकले ॥४॥

पृथिव्यापस्तेजः पवनगगने तत्प्रकृतयः,
[५]स्थितास्तन्मात्रास्ता विषयदशकं मानसमिति ।

१-कलितसरणिं कल्पिकतनुं । २-पुनर्व्यावृत्ताक्षिद्वयमपि । ३-श्लथयति, विलसति । ४-दशक्ता । ५-स्थितास्तन्मात्राप्ता ।

[1]ततो माया विद्या तदनु च महेशः शिव इतः,
परं तत्त्वातीतं मिलितवपुरिन्दोः परकला ॥५॥

कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति च ततो योषिदपरा,
कुलं त्यक्त्वा [2]रौति स्फुटति च [3]महाकालभुजगी ।
ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाशकमले,
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्काररसिका ॥६॥

त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे,
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ।
[4]सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो—
रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं [5]विहरसे ॥७॥

त्रिखण्डं ते चक्रं शुचिरविशशाङ्कात्मकतया,
मयूखैः [6]षट्त्रिंशद्दशयुततया खण्डकलितैः ।
पृथिव्यादौ तत्त्वे पृथगुदितवद्भिः परिवृतं,
[7]भवेन्मूलाधारात्प्रभृति तव षट्चक्रसदनम् ॥८॥

शतं चाष्टौ वह्नेः शतमपि कलाः षोडश रवेः,
शतं षट्[8] च त्रिंशत्सितमयमयूखाश्चरणजाः ।
य एते षष्टिश्च त्रिशतमभवंस्त्वच्चरणजा,[9]
[10]महाकौलैस्तस्मान्न हि तव शिवे कालकलना ॥९॥

त्रिकोणं चाधारं [11]त्रिपुरतनु तेऽष्टारमनघे,
[12]भवेत् स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपुरम् ।
दशारं ते संवित्कमलमथ मन्वश्रकमुमे,
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दवगृहम् ॥१०॥

१-तया । २-काचित् । ३-महाकालपतगी, महानील-भुजगी । ४-सुधासिन्धोस्तस्मिन् । ५-विहरसि । ६-षट्त्रिंशत्त्रिशतयुतमाखण्ड०, षट्त्रिंशच्छतयुततया । ७-भवेन्मूलाधारप्रभृति । ८-षट्त्रिंशद्द्वे, षट्त्रिंशद्वै सितमयि । ९-चरणगा । १०-महाकालस्तस्मात् । ११-त्रिभुवननुते० त्रिभुवननुतेष्वार० । १२-तव स्वाधिष्ठानं भगवति ।

त्रिकोणे ते वृत्तत्रितयमिभकोणे वसुदलं,
कलाश्रं मिश्रारे भवति भुवनाश्रे च[1] भुवनम् ।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति [2]भगे शाक्तिकमुमे,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्तिशिवयोः ॥११॥

कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नादविभवे,
तयोर्नादेनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः ।
तयोर्बिन्दावैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे,
[3]तदेवं षोढैक्यं भवति हि सपर्या समयिनाम् ॥१२॥

कला नादो बिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं,
षडब्जं चाधारप्रभृतिकममीषां च मिलनम् ।
[4]तदेवं षोढैक्यं भवति खलु येषां समयिनां,
चतुर्धैक्यं तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम् ॥१३॥

तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती,
चतुर्धैक्यं तेषां भवति च चतुर्बाहुरुदिता ।
धनुर्बाणानिक्षूद्भवकुसुमजानङ्कुशवरं,
लसत्-पाशं हस्तेरुदितरविबिम्बाकृतिरुचिः[5] ॥१४॥

भवत्यैक्यं षोढा भवति भगवत्याः समयिनां,
मरुत्वत्कोदण्डद्युतिनियुतभासा समरुचिः ।
भवत्पाणिव्रातो दशविध इतीदं मणिपुरे,
भवानि ! प्रत्यक्षं तव वपुरुपास्ते न हि परम् ॥१५॥

इत्यैक्यनिरूपणम् ।

भवानि ! श्रीहस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमथो,
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्त्रक्शुकवरौ ।

१-त्रिभुवनम् । २-दशे शक्तिकमुभे, भगे शाक्तकमुमे । ३-तथैवं । ४-तथैवं । ५-कृतिरुचिम् । यहीं—'तथा पाशं बिभ्रत्युदित' ऐसा पाठ भी है ।

अथ द्वाभ्यां मुद्रामभयवरदानैकरसिकां,[1]
क्वणद्वीणां द्वाभ्यां [2]त्वमुरसि कराभ्यां च बिभृषे ॥१६॥

त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुदभूद्,
दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्रं समभवत् ।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात् त्रिवलयं,
[3]चतुर्द्वाः प्राकारत्रितयमिदमेवाम्ब ! [4]शरणम् ॥१७॥

चतुःषष्टिस्तन्त्राण्यपि [5]कुलमतं निन्दितमभूद्-
यदेतन्मिश्राख्यं मतमपि भवेन्निन्दितमिह ।
शुभाख्याः पञ्चैताः श्रुतिसरणिसिद्धाः प्रकृतयो,
महाविद्यास्तासां भवति [6]परमार्थो भगवती ॥१८॥

स्मरो मारो मारः स्मर इति [7]परो मारमदनः,
स्मरानङ्गाश्चेति[8] स्मरमदनमारा स्मर इति ।
त्रिखण्डः खण्डान्ते [9]कलितभुवनेश्यक्षरयुत-
श्चतुः पञ्चार्णास्ते त्रय इति च पञ्चाक्षरमनुः[10] ॥१९॥

त्रिखण्डे त्वन्मन्त्रे शशिसवितृवह्न्यात्मकतया,
स्वराश्चन्द्रे लीनाः सवितरि कलाः कादय इह ।
भकाराद्या वह्नावथ कषयुगं बैन्दवगृहे,
निलीनं सादाख्ये शिवयुवति नित्यैन्दवकले ॥२०॥

ककाराकाराभ्यां 'स्वरगणमवष्टभ्य निखिलं,
कलाप्रत्याहारात् सकलमभवद् व्यञ्जनगणः ।
त्रिखण्डे स्यात् प्रत्याहरणमिदमन्वक्कषयुग[11]-
क्षकारश्चाकाशेऽक्षर-तनुतया चाक्षरमिति ॥२१॥

१-०रसिके । २-०मुरसि च । ३-चतुर्धा । ४-चरणम् । ५-कुलनुतं निन्दितमिदं तदेत० । ६-परमार्था, परमार्थो भगवति । ७-स्मरो । ८-०श्चैते । ९-कलितभुवने ते क इति यः । १०-०मनोः । ११-०मञ्चत्कषयुगं ।

[1]विदेहेन्द्रापत्यं श्रुत इह ऋषिर्यस्य च मनो-
रयं चार्थः सम्यक् श्रुतिशिरसि तैत्तिर्यकऋचि ।
ऋषिं हित्वा चास्या हृदयकमले नैतमृषिमि-
त्यृचाभ्युक्तः पूजाविधिरिह भवत्याः समयिनाम् ॥२२॥

त्रिखण्डस्त्वन्मन्त्रस्तव च सरघायां निविशते,
श्रियो देव्याः शेषो यत इह समस्ताः शशिकलाः ।
त्रिखण्डे त्रैखण्ड्यं निवसति समन्त्रे च सुभगे,
षडब्जारण्यानी त्रितययुतखण्डे निवसति ॥२३॥

त्रयं चैतत् स्वान्ते परमशिवपर्यङ्कनिलये,
परे [2]सादाख्येऽस्मिन्निवसति चतुर्धैक्यकलनात् ।
स्वरास्ते लीनास्ते भगवति कलाश्रे च सकलाः,
ककाराद्या वृत्ते तदनु चतुरश्रे च यमुखाः ॥२४॥

हलो बिन्दुर्वर्गाष्टकमिभदलं शाम्भववपु-
श्चतुश्चक्रं [3]शक्रस्थितमनुभयं शक्तिशिवयोः ।
निशाद्या दर्शाद्याः श्रुतिनिगदिताः [4]पञ्चदशधा,
[5]भवेयुर्नित्यास्तास्तव जननि ! मन्त्राक्षरगणाः ॥२५॥

इमास्ताः षोडश्यास्तव च सरघायां शशिकला-
स्वरूपायां लीना निवसति तव श्रीशशिकला ।
अयं प्रत्याहारः श्रुत इह कलाव्यञ्जनगणः,
ककारेणाकारः स्वरगणमशेषं कथयति ॥२६॥

क्षकारः पञ्चाशत्कल इति [6]हलो बैन्दवगृहं,
[7]ककारादूर्ध्वं स्याज्जननि ! तव नामाक्षरमिति ।
भवेत्पूजाकाले मणिखचितभूषाभिरभितः,
प्रभाभिर्व्यालीढं भवति मणिपूरं सरसिजम् ॥२७॥

१-विदेहो नैर्ऋत्याः सुत इह ऋषिर्यः स च । २-सादाख्यास्मिन् । ३-शक्तास्थित०, शक्तौ स्थित० । ४-पञ्चदश ता । ५-नित्याप्तास्तव । ६-हरो । ७-क्षकारा० ।

वदन्त्येके वृद्धा मणिरिति जलं [1]तेन निबिडं,
परे तु त्वद्रूपं मणिधनुरितीदं समयिनः।
अनाहत्या नादः प्रभवति सुषुम्णाध्वजनित-
स्तदा वायोस्तत्र प्रभव इदमाहुः समयिनः ॥२८॥

तदेतत्ते संवित्कमलमिति संज्ञान्तरमुमे,
भवेत्संवित्पूजा भवति कमलेऽस्मिन् समयिनाम्।
विशुद्ध्याख्ये चक्रे वियदुदितमाहुः समयिनः,
सदापूर्वो देवः शिव इति हिमानीसमतनुः ॥२९॥

त्वदीयैरुद्द्योतैर्भवति च विशुद्ध्याख्यसदनं,
भवेत्पूजा देव्या हिमकरकलाभिः समयिनाम्।
सहस्रारे चक्रे निवसति कलापञ्चदशकं,
तदेतन्नित्याख्यं भ्रमति सितपक्षे समयिनाम् ॥३०॥

अतः शुक्ले पक्षे [3]प्रतिदिनमिह त्वां भगवतीं,
निशायां सेवन्ते निशि चरमभागे समयिनः।
शुचिः स्वाधिष्ठाने रविरुपरि संवित्सरसिजे,
शशी चाज्ञाचक्रे हरिहरविधिग्रन्थय इमे ॥३१॥

कलायाः षोडश्याः प्रतिफलितबिम्बेन सहितं,
तदीयैः पीयूषैः पुनरधिकमाप्लाविततनुः।
सिते पक्षे सर्वास्तिथय इह कृष्णेऽपि च समा,
यदा चामावास्या भवति न हि पूजा समयिनाम् ॥३२॥

इडायां पिङ्गल्यां चरत इह तौ सूर्यशशिनौ,
तमस्याधारे तौ यदि तु [4]मिलितौ सा तिथिरमा।
तदाज्ञाचक्रस्थं शिशिरकरबिम्बे रविनिभं,
दृढव्यालीढं सद्विगलितसुधासारविसरम् ॥३३॥

१-लीननिबिडं। २-सादः। ३-प्रतिदिनमहस्त्वां। ४-तुलिती।

महाव्योमस्थेन्दोरमृतलहरीप्लाविततनुः,
[1]प्रशुष्यद्वै नाडीप्रकरमनिशं प्लावयति तत् ।
यदाज्ञायां विद्युन्नियुतनियुताभाक्षरमयी,
[2]स्थिता विद्युल्लेखा भगवति विधिग्रन्थिमभिनत् ॥३४॥

ततो गत्वा ज्योत्स्नामयसमयलोकं [3]समयिनां,
पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्त्वेन मिलिता ।
सहस्रारे पद्मे शिशिरमहसां बिम्बमपरं,
तदेव श्रीचक्रं सरघमिति तद्बैन्दवमिति ॥३५॥

वदन्त्येके सन्तः परशिवपदे तत्त्वमिलिते,
ततस्त्वं [4]षड्विंशी भवसि शिवयोर्मेलनवपुः ।
त्रिखण्डेऽस्मिन् स्वान्ते परमपदपर्यङ्कसदने,
परे सादाख्येऽस्मिन्निवसति [5]चतुर्धैक्यकलनात् ॥३६॥

[6]क्षितौ वह्निर्वह्नौ वसुदलजले दिङ्मरुति दिक्-
[7]कलाश्रे मन्वश्रं दृशि [8]वसुरथो राजकमले ।
[9]प्रतिद्वैतग्रन्थिस्तदुपरि चतुर्द्वारसहितं,
[10]महीचक्रं चैकं भवति भगकोणैक्यकलनात् ॥३७॥

इति मन्त्रचक्रैक्यम् ।

[11]षडब्जारण्ये त्वां समयिन इमे पञ्चकसमां,
यदा संविद्रूपां विदधति च षोढैक्यकलिताम् ।[12]
मनो जित्वा[13] चाज्ञासरसिज इह प्रादुरभवत्,
तडिल्लेखा नित्या भगवति तवाधारसदनम् ॥३८॥

भवत्साम्यं केचित् त्रितयमिति [14]कौलप्रभृतयः,
परं तत्त्वाख्यं [15]चेत्यपरमिदमाहुः समयिनः ।

१-प्रशुष्यद्वेशन्त० । २-सिता । ३-ससमया । ४-षट्विंशा । ५-चतुर्थैक्य० । ६-महावह्नि० । ७-कलारे । ८-वसुरधो । ९-प्रतिद्वयैतद्ग्रन्थि० । १०-महाचक्रं । ११-षडब्जारण्यैस्त्वां । १२-०कलितम् । १३-०सरसिजमिह । १४-कौम्भप्र० । १५-चेत्स पर इद०, परमिद० ।

क्रियावस्थारूपं प्रकृतिरभिधापञ्चकसमं,
तदेषां साम्यं [1]स्यादवनिषु च यो वेत्ति स मुनिः ॥३९॥

इत्यैक्यनिरूपणम् ।

वशिन्याद्या अष्टावकचटतपाद्याः प्रकृतयः,
स्ववर्गस्थाः स्वस्वायुधकलितहस्ताः स्वविषयाः ।
[2]यथावर्गं वर्णप्रचुरतनवो याभिरभवं-
स्तव प्रस्तारास्ते त्रय इति जगुस्ते समयिनः ॥४०॥

इमा नित्या वर्णास्तव चरणसम्मेलनवशा-
न्महामेरुस्थाः [3]स्युर्मनुमिलनकैलासवपुषः ।
वशिन्याद्या एता अपि [4]तव सबिन्द्वात्मकतया,
महीप्रस्तारोऽयं क्रम इति रहस्यं समयिनाम् ॥४१॥

इति प्रस्तारत्रयनिरूपणम् ।

भवेन्मूलाधारं तदुपरितनं चक्रमपि तद्-
द्वयं तामिस्राख्यं शिखिकिरणसम्मेलनवशात् ।
तदेतत्कौलानां प्रतिदिनमनुष्ठेयमुदितं,
भवत्या वामाख्यं मतमपि परित्याज्यमुभयम् ॥४२॥

अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि-
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने ।
अतो बाह्या पूजा भवति भगरूपेण च ततो,
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्यचरिते ॥४३॥

नवव्यूहं कौलप्रभृतिकमतं[5] तेन स विभु-
र्नवात्मा देवोऽयं जगदुदयकृद्भैरववपुः[6] ।

१-त्वामवनिषु । २-यदा वर्गा वर्णप्रचुरतरवो । ३-०स्थास्यन्मनु० । ४-च सहबि० ।
५-प्रभृतिकमिदं । ६-कृच्छैशववपुः ।

नवात्मा वामादि-प्रभृतिभिरिदं [1]भैरववपु-
मंहादेवी ताभ्यां जनकजननीमज्जगदिदम् ॥४४॥

भवेदेतच्चक्रद्वितयमतिदूरं समयिनां,
विसृज्यैतद्युग्मं तदनु मणिपूराख्यसदने ।
त्वया [2]सृष्टैर्वारिप्रतिफलितसूर्येन्दुकिरणै-
[3]र्द्विधा लोके पूजां विदधति भवत्याः समयिनः ॥४३॥

अधिष्ठानाधारद्वितयमिदमेवं[4] दशदलं,
सहस्राराज्जातं [5]मणिपुरमतोऽभूद् दशदलम् ।
हृदम्भोजान्मूलान्नृपदलमभूत् स्वान्तकमलं,
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम् ॥४६॥

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं,
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं [6]सकरणम् ।
ततो मूलाधाराद् द्वितयमभवत् तद्दशदलं,
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुरभवत् ॥४७॥

तदेतद्बिन्दोर्यद्दशकमभवत्तत्प्रकृतिकं,
दशारं सूर्यारं नृपदलमभूत् स्वान्तकमलम्[7] ।
रहस्यं कौलानां द्वितयमभवन्मूलसदनं,
[8]तथाधिष्ठानं च प्रकृतिमिह सेवन्त[9] इह ते ॥४८॥

अतस्ते कौलास्ते भगवति दृढप्राकृतजना,
इति प्राहुः प्राज्ञाः कुलसमयमार्गद्वयविदः ।
महान्तः सेवन्ते सकलजननीं बैन्दवगृहे,
शिवाकारां नित्याममृतझरिकामैन्दवकलाम् ॥४९॥

१-बैन्दववपुः । २-सृष्टे वारि० । ३-विभालोके । ४-०मेदद्दशः । ५-मणिपुरमितो० । ६-नकरणम् । ७-०न्नेत्रकमलम् । ८-तदा । ९-मथ सेवन्त्विह च ते ।

इदं [1]कालोत्पत्तिस्थितिलयकरं पद्मनिकरं,
त्रिखण्डं श्रीचक्रं मनुरपि च[2] तेषां च मिलनम् ।
तदैक्यं षोढा वा भवति च चतुर्धेति च तथा,
तयोः साम्यं पञ्चप्रकृतिकमिदं शास्त्रमुदितम् ॥५०॥

उपास्तेरेतस्याः फलमपि च सर्वाधिकमभू-
त्तदेतत्कौलानां फलमिह हि चैतत्समयिनाम् ।
सहस्रारे पद्मे सुभगसुभगोदेति[3] सुभगे,
परं सौभाग्यं यत्तदिह तव सायुज्यपदवी ॥५१॥

[4]अतोऽस्याः संसिद्धौ सुभगसुभगाख्या गुरुकृपा-
कटाक्षव्यासङ्गात् स्रवदमृतनिष्यन्दसुलभा ।
तथा विद्धो योगी विचरति निशायामपि दिवा,
[5]दिवा भानू रात्रौ विधुरिव [6]कृतार्थीकृतमतिः ॥५२॥

इति परम-पूज्य-श्रीगौडपादाचार्यवर्य-विरचिता

'सुभगोदयस्तुतिः'

सम्पूर्णा ।



१-कौलोत्पत्ति० । २-तु । ३-०क्तेति सुभगं । ४-अतस्ते संसिद्धा । ५-दिवा वा रात्रौ वा । ६-कृतार्थीकृत इति ।

